सत्य हरिश्चन्द्र

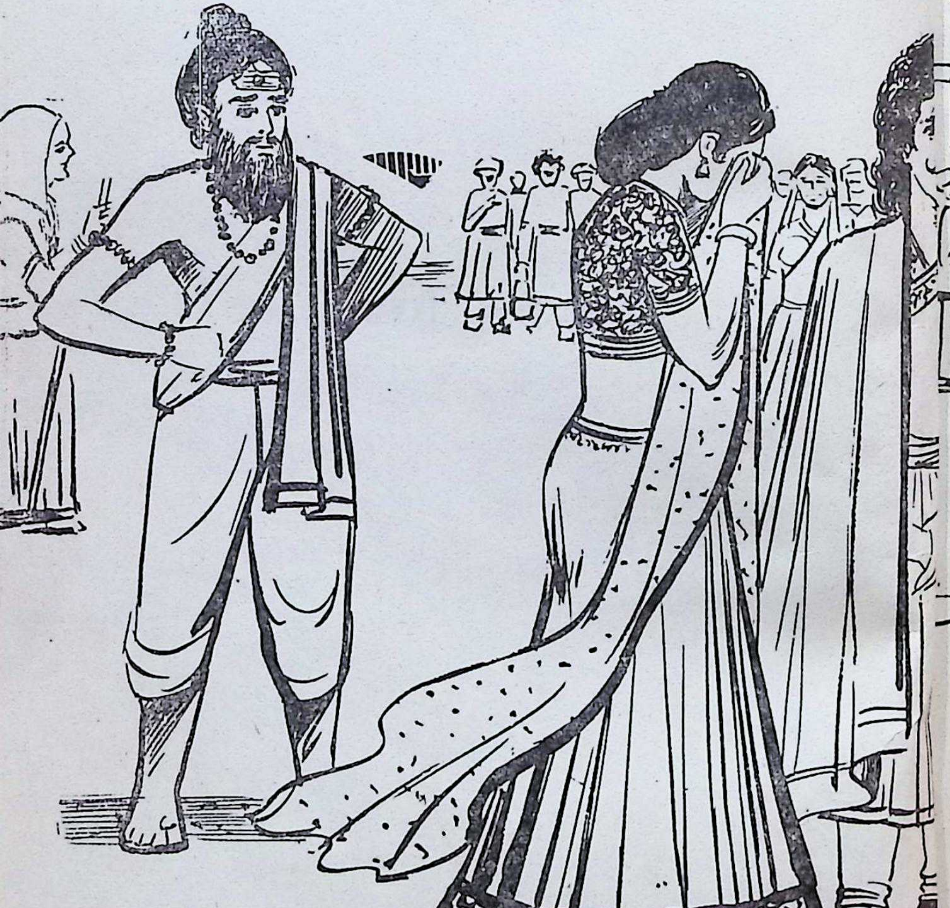
[मूल्यांकन, मूल पाठ एवं कठिन शब्दार्थ सहित]

29

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

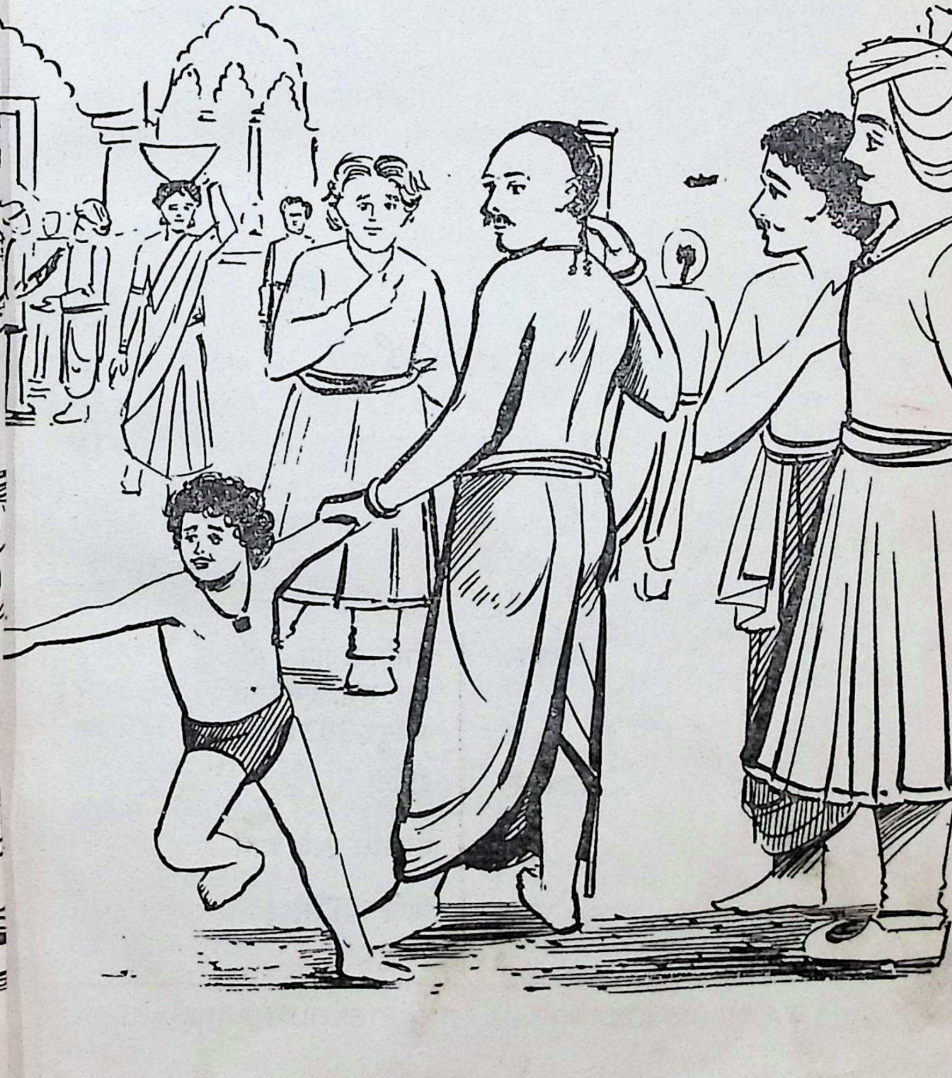
साहित्यागार, जयपुर

साहित्यागार, जयपुर



सत्यहरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र



मूल्यांकन : विजय कुलश्रेष्ठ
संयोजन : सोहन भारद्वाज
चित्रांकन : दीपा सुधीर

प्रकाशक	साहित्यागार एस. एम. एस. हाईवे जयपुर-302 003
संस्करण	1989
मूल्य	पच्चास रुपये मात्र
मुद्रक	प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड जयपुर

SATYA HARISHCHANDRA by BHARTENDU HARISHANDRA

सत्य हरिश्चन्द्र का मूल्यांकन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र'[1] की रचना सम्वत् 1932 विक्रम अर्थात् सन् 1875 ई० में की। 'सत्य हरिश्चन्द्र' मौलिक नाट्य-रचना के रूप अत्यन्त प्रसिद्ध रही है। इसकी कथा पौराणिक और क्षेमीश्वर कृत 'चण्डकौशिक' पर आधृत कथा-वृत्त के रूप में मौलिक कृतित्व है। इस सन्दर्भ में स्वयं भारतेन्दु का यह कथन द्रष्टव्य है—"...... मैंने यह सत्य हरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है। इससे सूर्य कुल संभूत राजा हरिश्चन्द्र की कथा है......इसकी कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपालदेव के समय में आर्य क्षेमीश्वर कवि ने चण्डकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द्र के चरित्र में बनाया है।"[2]

भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र ने इस नाटक की भूमिका (उपक्रम) में यह स्पष्ट किया है कि—कौशिक विश्वामित्र का नाम है, वे कान्यकुब्ज के क्षत्रिय राजा थे। वे एक बार वशिष्ठ के आश्रम पहुँचे, वहाँ ऋषि ने कामधेनु के प्रताप से इनकी पर्याप्त सेवा की; तो विश्वामित्र ने उसी गाय को न देने पर छीनने का प्रयास किया। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सेना और सौ पुत्र का विनाश किया। विश्वामित्र इस पराजय से उदास होकर तप करने तथा शिव से सभी प्रकार की अस्त्र-शक्ति का वरदान पाकर वशिष्ठ से लड़ने आ गये। लेकिन फिर भी असफलता का सामना करना पड़ा। अन्ततः पराजित विश्वामित्र ब्राह्मण हो गये। हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु शापित होकर विश्वामित्र के पास जाते हैं तथा विशमामित्र उन्हें अपने तपोबल से सीधे सशरीर स्वर्ग भेजने की व्यवस्था करते हैं। त्रिशंकु आकाश की ओर उड़ते हैं, पर स्वर्ग पहुँचने से पहले ही इन्द्र के अयोग्य बताने पर नीचे गिरने लगते हैं तो विश्वामित्र अपने तपोबल से उसे आकाश मार्ग में ही रोक देते हैं।

---

1. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, खण्ड 1, संख्या 9, प्रस्तावना संख्या 11 में प्रथम अंक गर्भांक 1-2 में सर्वप्रथम प्रकाशित
2. सत्य हरिश्चन्द्र : उपक्रम : भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला भाग, पृ. 253

भारतेन्तु ने उक्त कथानक के सन्दर्भ में बाल्मीकि रामायण (बालकाण्ड के 52-60 सर्ग) तथा महाभारत (शान्ति पर्व के एक सौ इकतालीसवें अध्याय) मार्कण्डेय पुराण (नवें अध्याय) कालिका पुराण (चौरासीवें अध्याय) से ग्रहण किये हैं। इस नाटक का समर्पण करते हुए उन्होंने लिखा है कि—"तुम्हारे सत्य-पथ पर चलने वाले कितना कष्ट उठाते हैं, वही इसमें दिखाया गया है। हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं, पर तुम्हारी तो बहुत कुछ है।"……लो सत्य हरिश्चन्द्र तुम्हें सर्मापित है…… सत्य का शब्द सार्थक है, कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं है।[1] वास्तव में भारतेन्दु ने बौद्धिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए इस नाटक में अपना ही जीवन भर दिया है। कारण यह है कि सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के नायक राजा हरिश्चन्द्र और काशी नगरी के निवासी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र; दोनों का नाम काशी नगरी से ही जुड़ा हुआ है। राजा हरिश्चन्द्र ने अष्ट महा-सिद्धियों, नवनिधियों और बारह प्रयोगों से प्रार्थना की है कि वे योगियों, सज्जनों और साधकों के पास जायें।[2] स्वयं नाटककार हरिश्चन्द्र ने जीवन भर सज्जनों को अपनी निधि बांटी है तथा काव्य, नाटक, निबन्ध के सभी प्रयोग साधकों से भरे तथा उनके प्रयोगों से वे साधक, कवि, नाटककार और निबन्धकार बन गये। नायक राजा हरिश्चन्द्र का जीवन अन्त:बाह्य संघर्षों (चतुर्थ अंक) से परिपूर्ण दिखाया है क्योंकि नाटककार हरिश्चन्द्र ने अनेक अन्त:बाह्य संघर्षों में अपना जीवन काटा है। दान और सत्य की रक्षा दोनों में ही समान रूप से मिलता है। इसके साथ ही इस नाटक में उच्च आदर्श रखा गया है—निज चरित्र सुधार का[3] तथा चण्डकौशिक में वर्णित श्रृंगार[4] छोड़ दिया गया है।

यहाँ यह कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि दान और सत्य से समान रूप से अनुराग रखनेवाले भारतेन्तु हरिश्चन्द्र अपने समकालीन कवियों, विद्वानों एवं अन्य गुणीजनों के लिए एक आश्रय-स्थल एवं कल्प-वृक्ष थे, तभी कहा गया है कि—"यदि हरिश्चन्द्र सरीखा उदार-हृदय, रुपयों को माटी समझने वाला गुणग्राही (नायक) हिन्दी की पतवार को उस सयय न पकड़ता और सब प्रकार से स्वार्थ छोड़कर तन-मन-धन से उसकी उन्नति में न लग जाता, तो आज हिन्दी का इस अवस्था पर पहुँचना कठिन था।"[5]

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ. 257
2. सत्य हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु ग्रंथावली, अंक 4, पृ 306
3. उपरिवत्, पृ. 256
4. चण्ड कौशिक, प्रथम अंक, श्लोक 21-22
5. राधाकृष्ण ग्रंथावली (प्र. सं. सन् 1930 ई.) पृ. 368

इसी कालावधि में सत्य हरिश्चन्द्र के कथानक के आधार कुछ अन्य थियेटरीकल नाटक भी लिखे गये थे—

अ – चुन्नीलाल	सत्य हरिश्चन्द्र	1898 ई०
आ– महतापराय	सत्य हरिश्चन्द्र	1890 ई०
इ – ललनपिया	सत्य हरिश्चन्द्र	1890 ई०
ई – नजीर वेग	सत्य हरिश्चन्द्र	1890-91 ई०
उ – रामभजन मिश्र	सत्य हरिश्चन्द्र	1899 ई०

इनमें से नजीर वेग का नाटक उर्दू प्रधान भाषा में लिखा गया था लेकिन यह कहा जा सकता है कि—नजीर वेग के नाटक हिन्दी के और अधिक निकट[1] आ गये हैं तथा उनके नाटक के इतर उपर्युक्त अन्य नाटकों में इन्दर सभा शैली का प्रयोग किया जाता रहा।

हिन्दी नाट्य-जगत में नाट्य-सर्जना का सामंजस्यवादी दृष्टिकोण बहुत महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है क्योंकि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पूर्वी और पाश्चात्य नाट्य-शास्त्रीय परम्पराओं का अन्धानुकरण नहीं किया, अपितु स्पष्ट भी किया कि—हमें नाटक लिखने में परिवर्तित समय के साथ चलना चाहिए, किन्तु इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम उपयोगी पुराने नियमों की सर्वथा उपेक्षा करें।[2] भारतेन्दु ने पूर्वी नाट्य-शास्त्र का विश्लेषण और पश्चिमी नाट्य-शास्त्र के अध्ययन के आधार पर आधुनिक हिन्दी या खड़ी बोली का प्रथम नाट्य-शास्त्र लिखा[3] और उसमें स्पष्ट किया है कि—"संस्कृत नाटकादि रचना के निमित्त महामुनि भरतजी जो सब नियम लिख गये हैं उनमें जो हिन्दी नाटक-रचना के नितान्त उपयोगी हैं और इस काल के सहृदय सामाजिक लोगों की रुचि के अनुयायी हैं, वे ही नियम यहाँ प्रकाशित होते हैं।"

भारतेन्दु नवीन नाटकों की रचना के निम्नांकित उद्देश्य भी स्पष्ट किये—

(1) शृंगार (2) हास्य
(3) कौतुक (4) समाज-संस्कार
(5) देशवत्सलता

1. तिवारी, गोपीनाथ : भारतेन्दुकालीन नाट्य-शास्त्र, पृ. 251
2. भारतेन्दु ग्रंथावली : पहिला भाग, पृ. 719
3. मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से सन् 1883 में प्रकाशित

उक्त साहित्य-सर्जनापरक सोद्देश्यता में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्यिक हिन्दी को संवारा, साहित्य के साथ हिन्दी के नये आन्दोलन को जन्म दिया, हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय और जनवादी तत्वों को प्रतिष्ठित किया....उन्होंने अपने प्रदेश की सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पहचाना।[1] यही नहीं, भारतेन्दु ने परिवर्तन और संस्कार की प्रक्रिया केवल साहित्य-रचना से ही नहीं निभायी, वह वस्तुतः जनता के बीच आये....उन्होंने जनता से भाषा सीखी.......उनका लेखकीय व्यक्तित्व 'विशिष्टता' और 'महानता' का आकांक्षी नहीं था। इसीलिए यह कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता कि भाषा को जन-जीवन और हिन्दी की प्रकृति से जोड़ने और रचने में भारतेन्दु का प्रयत्न उल्लेखनीय है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक को युगीन समस्याओं, राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों, राष्ट्रीय चेतना, जन-जागृति और मनुष्य की संवेदना से जोड़कर ही नहीं देखा, बल्कि बलिया के रंगमंच पर 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की प्रस्तुति में हरिश्चन्द्र की भूमिका में स्वयं रंगमंच पर भी आये थे। इस प्रकार वे मात्र नाट्य-लेखन, रंग-कर्म या अभिनय तक ही सीमित नहीं थे, बल्कि नाट्य-समीक्षक के रूप में सजगता रखकर ब्राह्मण पत्र में बराबर टिप्पणियाँ लिखते रहे। यही नहीं, नाटक और रंगमंच का पुनरुत्थान करने के लिये उन्होंने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में सत्यवादिता, कर्त्तव्यपरायणता, चारित्रिक-दृढ़ता जैसे मूल्यों द्वारा शृंगार के अतिरिक्त युवा वर्ग के लिये उपयोगी आदर्श की स्थापना की है।

भारतीय नाट्य-कला के अनुसार नाटक के तीन मूल तत्व होते हैं—

(1) कथा वस्तु (2) नायक (3) रस

नाटककार कथावस्तु के दो प्रकार—आधिकारिक और प्रासंगिक—के वर्ग करता है। नाटक के प्रधान फल का भोक्ता नायक या अधिकारी होता है और उसकी ही कथा 'आधिकारिक' होती है तथा उसकी सहायिका इतिवृत्ति 'प्रासंगिक' कहलाती है 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक का नायक हरिश्चन्द्र है अतः उनकी कथा 'अधिकारिक' है। और इसी में भूत आदि का विवरण 'प्रासंगिक' कथा मात्र है। वस्तुतः सत्य हरिश्चन्द्र नाटक पौराणिक आख्यान तथा चण्डकौशिक नाटक के आधार पर लिखा गया है, परन्तु भारतेन्दु ने इसकी कथावस्तु बड़ी कुशलता से सुसंगठित की है जिसमें वीर

1. शर्मा, रामविलास : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र. पृ. 121 एवं 125

रस के सत्य, ज्ञान तथा धर्म तीनों भेदों का परिपाक हुआ है और करुण, वीभत्स रसों का भी समावेश हुआ है। इसमें चार ही अंक और अर्थ प्रकृति तथा अवस्थाएँ—सभी आयुक्त स्थानों पर मौजूद हैं और यह नाटक सभी लक्षणों से युक्त है।[1]

इस नाटक में राजा हरिश्चन्द्र तथा विश्वामित्र प्रधान पात्र और रानी शैव्या, इन्द्र, नारद गौण पात्र हैं। हरिश्चन्द्र फलभोक्ता नायक हैं तथा विश्वामित्र प्रतिनायक हैं। यही कारण है कि आरम्भ से अन्त तक नाटककार ने इस कौशल से कथा संगठन किया है कि दर्शकों में नायक हरिश्चन्द्र के प्रति ज्यों-ज्यों सहानुभूति एवं आकर्षण बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों तपस्वी प्रतिनायक विश्वामित्र के प्रति उनकी अश्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। महारानी शैव्या नायिका हैं क्योंकि नायक हरिश्चन्द्र की पत्नी हैं। सहायक पात्रों में इन्द्र और नारद ही मुख्य हैं तथा स्वाभाविक हैं, परन्तु नारद को कलहप्रिय न होकर ऋषिवत् व्यवहार युक्त दिखाया है तथा उनसे इन्द्र को उपदेश दिलाया है।

सत्य हरिश्चन्द्र मौलिक एवं स्वतंत्र नाट्य-कृति है, भले ही इसका आधार पौराणिक कथा है। यद्यपि चण्डकौशिक से कुछ श्लोक उद्धृत करके भी भारतेन्दु ने अपनी निजी कल्पना द्वारा कथा-सृष्टि की है। राजा हरिश्चन्द्र दानवीर के रूप में आरम्भ से चित्रित होते हैं और अन्त तक हर प्रकार के प्रलोभनों से दूर रहकर सत्यवीर रूप में प्रतिष्ठापित हो जाते हैं। इस नाट्य-रचना के माध्यम से भारतेन्दु ने अपने समकालीन नाट्य-लेखकों का मार्ग प्रशस्त किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु के नाट्य लेखन पर विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि—"इन नाटकों की रचना में उन्होंने मध्यम मार्ग का अवलम्बन किया। न तो बंगला के नाटकों की तरह प्राचीन भारतीय शैली को एकबारगी छोड़ वे अंग्रेजी नाटकों की नकल पर चले और न प्राचीन नाट्य-शास्त्र की जटिलता में अपने को फंसाया।"[2] अतः यह कहना उचित होगा कि नाटककार भारतेन्दु ने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में निजी अनुभवों और निजी विचारों को कथा वस्तु में सन्निहित करके नवीन नाट्य-शिल्प की निजी शैली का निर्माण किया है।

---

1. ब्रज रत्नदास : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. 210
2. शुक्ल, रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास. पृ. 514

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाट्य-शास्त्रीय निबन्ध 'नाटक' में यह बतलाया है कि "नाटक-रचना में शैथिल्य दोष कभी न होना चाहिए। नायक-नायिका द्वारा किसी कार्य विशेष की अवतारणा करके उसका मूलच्छेद करना नाटक-रचना का उद्देश्य नहीं है।[1]

नाट्य-लेखन को वे मात्र सामग्री-संग्रह नहीं मानते, बल्कि अलीक संकल्प मानकर ही वे स्पष्ट करते हैं कि—"नाट्य-कला-कौशल दिखलाने की देश, काल और पात्रगण के प्रति विशेष रूप से दृष्टि रखनी उचित है।"[2] उन्होंने नाटक-रचना में 'उद्देश्यफल का उत्तम निकलना'[3] बहुत आवश्यक कहा है। यही नहीं, तत्कालीन पारसी थियेटर की नाट्य-शैली को अनुपयुक्त बताते हुए लिखा है कि—काशी में पारसी नाटकवालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यन्त खेमटेवालियों की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक-मटककर नाचने और 'पतरी कमर बलखाय' यह गाने लगा तो डाक्टर थिबो, बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान यह कहकर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता। ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं।[4] यही कारण है कि उन्होंने 'इस भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्व-पुरुष महाराज हरिश्चन्द्र'[5] के उपाख्यान के आधार पर 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की रचना 'चरित्र सुधार'[6] के उद्देश्य से की थी।

वास्तव में सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा भारत के घर-घर में प्रचलित है। उसे ही चरित्र-सुधार के लिये उपयुक्त नाट्य-रचना की उपदेश-परक उद्देश्य पूर्ति मानकर नाटककार हरिश्चन्द्र ने इस नाटक को चार अंकों में प्रस्तुत किया है। **प्रथम अंक** में नारद से हरिश्चन्द्र की प्रशंसा सुनकर विश्वामित्र उन्हें तेजोभ्रष्ट करने का दृढ़ निश्चय करते हैं। **द्वितीय अंक** में महारानी शैव्या का दुःस्वप्न, विश्वामित्र को हरिश्चन्द्र द्वारा राज्य दान करना तथा राज प्रासाद छोड़ देने का वर्णन है। **तृतीय अंक** में हरिश्चन्द्र

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहिला भाग, परिशिष्ट, पृ. 737
2. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहिला भाग, परिशिष्ट, पृ. 721
3. उपरिवत्, पृ. 740
4. उपरिवत्, पृ. 753
5. उपरिवत्, उपक्रम, पृ. 256
6. उपरिवत् ही।

स्वयं को चाण्डाल के हाथ बेचकर विश्वामित्र का ऋण पूरा करने तथा श्मशान में कफ़न का दान लेने के लिए प्रवृत्त होते हैं तथा चतुर्थ अंक में हरिश्चन्द्र अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं और अन्ततः विश्वामित्र क्षमा-याचना करते हैं तथा महादेव-पार्वती और भैरव हरिश्चन्द्र को आशीर्वाद और वरदान देते हैं। इस नाटक की कथा-सृष्टि और रस-सृष्टि पर विचार करते हुए डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का मत द्रष्टव्य है कि सम्पूर्ण नाटक में वीर (सत्यवीर और दानवीर) रस की निष्पत्ति पाई जाती है। इसमें रूपक रचना के लगभग सभी प्रमुख लक्षण पाये जाते हैं।[1]

सत्य हरिश्चन्द्र : नाट्य-समीक्षा

कल्पना-प्रसूत नाट्य विधान :

'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की सर्जना का आधार क्षमीश्वर कृत 'चण्डकौशिक' संस्कृत नाटक और पौराणिक उपाख्यान हैं। संस्कृत नाट्य-शास्त्रीय परम्परा में प्रयुक्त पांच कार्य अवस्थाएँ इस नाटक में उपलब्ध होती हैं :—

(1) आरम्भ	अंक 1
(2) प्रगति	अंक 2
(3) चरम सीमा	अंक 3
(4) निर्गति	अंक 4
(5) समाप्ति	अंक 4

उक्त पंच कार्यवस्थाओं में गुम्फित कथानक में नाटककार ने कल्पना को प्रश्रय दिया है तथा नारद की कलहकारी वृत्ति की परम्परा से हटकर उनकी प्रशंसकीय वृत्ति का संकेत किया है तथा इन्द्र को समझाते हुए दिखाया है कि—"आपको दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर सन्तोष करना चाहिए। ईर्ष्या करना तो क्षुद्राशयों का काम है।"....बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जिसका चित्त बड़ा है। अधिकार तो बड़ा है, पर चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं।[2] ....यही नहीं, वह इन्द्र से विदा लेते हुए कहते हैं कि—अब आप तो विश्व के

1. हिन्दी साहित्य कोश, द्वितीय भाग, पृ. 615
2. भारतेन्दु ग्रंथावली, सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 267

अमित्रजी से राजा हरिश्चन्द्र को दुःख देने की सलाह कीजिएगा, तो हम उसमें बाधक क्यों हों ? पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं उतनी ही उनकी सत्य-कीर्ति तपाये सोने की भांति और चमकती है क्योंकि विपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती।[1] कल्पना-प्रसूत नाट्य-कथा-विकास की दृष्टि से यह भी द्रष्टव्य है कि भारतेन्दु ने चण्डकौशिक नाटक की कथानक-प्रश्रयता में भी अपनी मौलिकता के निमित्त उसके प्रथम अंक में ही राजा एवं शैव्या के सम्वादों में व्यंजित शृंगार-भाव को छोड़ दिया है।

नाटककार भारतेन्दु के पास कथानक के इतर अपनी कल्पना की ऊँची उड़ान लेने का अवसर यदि और कहीं था तो वह पात्रों के चरित्र-विकास में ही था और वे इस अवसर का लाभ उठाने में चूके नहीं हैं। उन्होंने अपने नाटकीय-कौशल का परिचय देते हुए नारद और विश्वामित्र के चरित्रों को पारम्परिक रूप में प्रस्तुत करने के स्थान पर अपनी कल्पना-शक्ति से नवीन चरित्र प्रदान किया है। यही नहीं, यह चरित्र उनके सर्वोच्च आदर्श रूप में परिकल्पित किया गया है।

समसामयिक रंगमंच या थियेटर—विशेषकर पारसी थियेटर के लिए लिये लिखित भ्रष्ट नाटकों—इन्दर सभा, रास लीला, रामलीला यात्रा आदि के विरुद्ध प्रतिक्रिया में भारतेन्दु ने साहित्यिक नाटक के लेखन की व्यवस्था में सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के कल्पना प्रसूत कथानक के प्रौढ़त्व एवं रस-परिपाक पर महेन्द्र किशोर का मत है कि—"शेक्यपीयर के कई नाटक पढ़ने में आये पर आँख से आंसू बहानेवाली शक्ति हमने इसी 'सत्य हरिश्चन्द्र' में पाई।"[2] इसी प्रकार नाटककार की कल्पनाप्रसूत सर्जनात्मक मेधा का परिचय लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय उसे सर्वोत्कृष्ट मौलिक रचनाओं में से[3] दशरथ ओझा उसे 'सबसे प्रौढ़ और उत्तम' कृति[4] के रूप में स्वीकार करते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने समसामयिक परिस्थितियों एवं समस्याओं के बीच भारतीय युवा पीढ़ी का मनोबल ऊँचा उठाने के लिए ही पौराणिक

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, सत्य हरिचन्द्र, पृ. 268
2. सहाय, शिवनंदन : भारतेन्दु वाबू का जीवन चरित्र, पृ. 178 पर द्रष्टव्य
3. वार्ष्णेय, ल. सा. : आधुनिक हिन्दी साहित्य (1850-1900), पृ. 231
4. ओझा, दशरथ : हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ. 212

कथा के विविध प्रसंगों को अपनी कल्पना से परिपुष्ट करने में पूर्ण सफलता पाई है।

कथानक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सत्य हरिश्चन्द्र का कथानक संस्कृत नाटक की पंच कार्यावस्थाओं के अन्तर्गत संगठित किया है। जिसमें प्रथम अंक से पूर्व सूत्रधार और नटी हरिश्चन्द्र कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक मंचित करने की सूचना दी है। फिर प्रथम अंक (इन्द्र सभा) में देवराज इन्द्र पृथ्वी के राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा लेने का निर्णय करते हैं; तभी नारद आकर राजा हरिश्चन्द्र के निष्कपट, अकृत्रिम स्वभाव का उल्लेख करते हैं तथा बतलाते हैं कि हरिश्चन्द्र में विद्यानुरागिता, उपकारप्रियता, अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य, सम्पत्ति में अनभिमान, युद्ध में सुस्थिरता आदि गुणों को विद्यमान बताते हैं,[1] लेकिन इन्द्र ईर्ष्यावश हरिश्चन्द्र की परीक्षा लेने का निश्चय करते हुए मन-ही-मन सोचते हैं कि नारद जी द्वारा दी गई सूचनाओं से तो—'फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हमको भी अच्छा उपाय मिला।'[2] तभी विश्वामित्र इन्द्र सभा में आते हैं तो इन्द्र प्रसन्न हो उठते हैं कि इनसे परीक्षा का काम कराया जा सकता है। इन्द्र विश्वामित्र को बतलाते हैं कि— 'हमारा उच्चपद का आदरणीय स्वभाव उस पर-कीर्ति को सहन नहीं कर सका तो विश्वामित्र इन्द्र को आश्वस्त करते हैं—'मैं अभी देखता हूँ न। जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं।'[3]

द्वितीय अंक (राजा हरिश्चन्द्र के राजभवन) में रानी शैव्या अपने देखे गये दुःस्वप्न का प्रसंग सखी से कहती है। तभी एक ब्राह्मण आकर अभिमंत्रित जल और रक्षा-सूत्र लाकर देता है। राजा हरिश्चन्द्र अपने परिकर (प्रोटोकॉल) सहित आकर यथास्थान बैठते हैं। रानी के स्वप्न का वृत्त सुनकर स्वस्वप्न की चर्चा करते हैं कि मैंने एक क्रोधी ब्राह्मण को अपना सारा राज्य दे दिया है। अब सोचता हूँ कि उस ब्राह्मण को राज्य सौंपे बिना भोजन कैसे करूंगा। तभी द्वारपाल क्रोधी ब्राह्मण के आगमन की सूचना देता है। द्वारपाल के साथ क्रोधी ब्राह्मण (विश्वामित्र) के आने

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला भाग, पृ. 264
2. उपरिवत्, पृ. 266
3. उपरिवत्, पृ. 269

पर राजा आसन देता है पर क्रोधाविष्ट विश्वामित्र ब्राह्मण कहता है—ब्रह्मा का तो गर्व उसी दिन चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई। आज इस राजकुलांगार का अभिमान चूर्ण करूंगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत में दानी प्रसिद्ध हो रहा है··· । राजा से पृथ्वी (राज्य) दान की दक्षिणा दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा मांगता है और राज्यदान कर दिये जाने पर सारा कोष तो ब्राह्मण का हो गया है······यदि एक महीने में मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदण्ड गिराऊँगा।

तृतीय अंक काशी के घाट से आरम्भ होता है जहाँ हरिश्चन्द्र अपनी आत्मा और पुत्र बेचने के लिए पहुँचता है। तभी विश्वामित्र आकर कहते हैं कि अपने को जल्दी क्यों नहीं बेचता है बोल कब देगा दक्षिणा ? राजा के साथ रानी शैव्या भी बिकने के लिए तैयार होती है और 'पर-पुरुष-सम्भाषण और उच्छिष्ट-भोजन छोड़कर सभी सेवाएँ करने के लिए शर्त रखती है। सबसे पहले पांच सहस्र में शैव्या बिक जाती है तथा पुत्र सहित उपाध्याय के वटुक (शिष्य) के साथ जाती है। चाण्डाल वेष में धर्म आकर पांच सहस्र मुद्रा में राजा हरिश्चन्द्र को क्रय करता है। विश्वामित्र दक्षिणा लेकर चले जाते हैं। चाण्डाल वेषी धर्म राजा को आदेश देता है—

जो कर तुमको नहीं चुकावे।
सो किरिया करने नहिं पावे।।
चलो घाट पर करो निवास।
भए आज से हमरे दास।।[1]

चतुर्थ अंक (दक्षिण श्मशान) में कम्बल ओढ़े और लाठी लिये हरिश्चन्द्र पहरा देते हुए विचार करता है कि अब जन्म भर यही दुःख भोगना पड़ेगा। न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शांत हुआ कि नहीं। सावधान होकर पुकारता है—'खबरदार ! बिना हमें आधा कफन दिये कोई संस्कार न करे।'[2] रात्रि बेला में श्मशान के वीभत्स दृश्यों में हरिश्चन्द्र को अपनी प्रिया शैव्या का स्मरण हो आता है तभी कापालिक वेष में धर्म आ कर कहता है कि मुझे यह सिद्धिकाल है, विघ्न बाधक हो रहे, अतः तुम विघ्नों का निवारण करो। विघ्न निवारण होते ही तीन महाविद्याएँ आकर हरिश्चन्द्र से निवेदन करती हैं कि आप हमें

1. भारतेन्दु ग्रंथावली : सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 293
2. उपरिवत्, पृ. 295

ग्रहण कीजिए तो हरिश्चन्द्र उन्हें मुनि विश्वामित्र की वशवर्तिनी बनने के लिए कहते हैं। कापालिक रसेन्द्र भेंट करता है तो हरिश्चन्द्र कहते हैं कि महाराज ! दास धर्म के यह विरुद्ध है.......क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना स्वत्वमात्र बेच चुका, इसमें आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिए। प्रातःकाल शैव्या मृत पुत्र लिये हुए श्मशान में आती है। हरिश्चन्द्र अपने मृत पुत्र को पहचान कर रोता है तथा स्वतः फांसी लगा लेना चाहता है। सम्भलकर वह सोचता है कि अपने शरीर पर स्वामी का अधिकार स्वीकार कर आत्मघात भी नहीं कर सकता। शैव्या चिता बनाकर पुत्र के शव को उठाकर चिता पर रखना चाहती है तभी हरिश्चन्द्र कहते हैं—"महाभागे, श्मशानपति की आज्ञा है कि आधा क़फन दिये बिना कोई मुरदा न फूंकने पावे, सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो।" क़फन देने के लिए हाथ फैलाता है तभी हाथ में चक्रवर्ती चिह्न देखकर शैव्या पति को पहचान लेती है और कहती है—"नाथ ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आंचल फाड़कर इसे लपेट लाई थी। उसमें से आधा दे दूँगी तो यह खुला रह जायेगा।"[1] परन्तु हरिश्चन्द्र कहते हैं—"यदि मैं अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझकर तुमसे इसका आधा क़फन न लूँ तो बड़ा अधर्म होगा.......क़फन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो।"[2] तभी भगवान् स्वयं प्रकट होकर कहते हैं—"बस, महाराज बस ! धर्म और सबकी परमावधि हो गई।"[3]

भगवान से गद्-गद् स्वर में सप्रणाम हरिश्चन्द्र कहते हैं कि—"प्रभु ! आपके दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आपकी आज्ञानुसार यह वर मांगता हूँ कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ बैकुण्ठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।"[4]

उक्त कथानक में मूल या अधिकारिक कथा हरिश्चन्द्र की है तथा प्रासंगिक कथा भूत, भैरव, पिशाच, डाकिनी, वैताल, धर्म आदि देवता से सम्बन्धित है। पौराणिक परिवेश से अपनी समसामयिक परिस्थितियों एवं समस्याओं में भी प्रेरणा लेने, सत्याचरण तथा चारित्रिक सुधार के

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 316
2. उपरिवत् ही
3. उपरिवत् ही
4. उपरिवत्, पृ. 318

उद्देश्य से उचित कथानक की रचना करने में नाटककार पूर्णतः सफल रहा है ।

सत्य हरिश्चन्द्र : एक सोद्देश्य नाट्य-सर्जना

भारतेन्दु के समग्र साहित्यिक कृतित्व का मूल्यांकन 'उद्देश्य' तत्त्व के आधार पर किया जा सकता है क्योंकि कोई भी रचनाकार निरुद्देश्य न तो साहित्य-सर्जना करता है और न अपनी शक्ति और क्षमता का किसी निरुद्देश्य कार्य के लिये अपव्यय करता है । इस दृष्टि से यदि भारतेन्दु कृत सत्य हरिश्चन्द्र नाटक को देखा जाये तो यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि नाटककार का उद्देश्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अभाव की पूर्ति करता है । तभी तो इसके उपक्रम में भारतेन्दु बाबू के मित्र बालेश्वर प्रसाद के आग्रह का उल्लेख है कि—'कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लड़कों को पढ़ने-पढ़ाने के योग्य हो । क्योंकि श्रृंगार रस में आपने जो नाटक लिखे हैं, वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं, लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं ।'[1] भारतेन्दु ने अपने मित्र के आग्रह की पूर्ति में यह रूपक लिखा और इसके उपाख्यानक सन्दर्भों का उल्लेख करते हुए अन्त में उन्होंने कहा है कि—'इस भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्व-पुरुष महाराज हरिश्चन्द्र भी थे । यह समझकर इस नाटक के पढ़नेवाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारेंगे·······।[2] नाटककार यहाँ अपने उद्देश्य की स्पष्टोक्ति अवश्य प्रस्तुत करता है ।

भारतेन्दु ने इस उद्देश्य की पूर्ति से पूर्व समसामयिक सन्दर्भ का उल्लेख सूत्रधार के माध्यम से भी किया है—"और जिनके लिए कुछ हो सकता है, वे ऐसी अंध-परम्परा में फँसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है । केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की बात है जिन्हें झूठी खैरख्वाही दिखाना वा लम्बा-चौड़ा गाल बजाना आता है ··· क्या हुआ, ढंग पर चला जायगा तो यों भी बहुत कुछ हो रहेगा ।"[3] यहाँ भारतेन्दु के संकल्प का संकेत मिलता है कि यदि उचित उद्देश्य देखा जायेगा तो परिणाम अवश्य ही निकलेगा । भारतेन्दु ने यह भी स्पष्ट किया है कि इस नाटक का प्रणयन इसलिये भी किया गया है कि पारसी-थियेटर में जिस प्रकार अस्तरीय नाटक प्रचलित थे, उनका उद्देश्य

---

1. सत्य हरिश्चन्द्र : उपक्रम : भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला भाग, पृ. 253
2. उपरिवत्, पृ. 256
3. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला भाग, सत्य हरिश्चन्द्र पृ. 259

मात्र धन कमाना था, जन मनोरंजन का निम्न स्तर भर था इसीलिये—"सत्य हरिश्चन्द्र अभी तक देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणापूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उसका कवि भी हम लोगों का एकमात्र जीवन है—"[1] कहकर अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है कि—नाटक लिखना आरम्भ करके, जो लोग उद्देश्य, वस्तु परम्परा से चमत्कार-जनक और अतिमधुर वस्तु-निर्वाचन करके भी स्वाभाविक सामग्री परिदोष के प्रति दृष्टिपात नहीं करते, उनका नाटक नाटकादि दृश्यकाव्य लिखने का प्रयास व्यर्थ है।

भारतेन्दु ने अपने जीवन-सत्य का एक प्रामाणिक रूप भी इस नाटक के माध्यम से प्रस्तुत किया है, क्योंकि उनकी अपनी मान्यता यह रही थी कि—'इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाऊँगा।' इसीलिये वे सत्याचरण तथा दानी के रूप में कम प्रसिद्धि-प्राप्त नहीं थे। उनके जीवन-वृत्त में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ सत्य भाषण और सदाचार तथा दान देने में वे कभी पीछे नहीं रहे थे। अनेक कठिनाइयों के बीच भी उन्होंने 'सत्य एवं दान' की वृत्ति नहीं छोड़ी थी। तभी उसका संकेत श्री शीतलाप्रसाद त्रिपाठी द्वारा सत्य हरिश्चन्द्र के नायक की नाट्य-लेखक हरिश्चन्द्र के रूप में एक समानता में किया है—[2]

जो गुन रूप हरिचन्द मैं, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचन्द मैं, लखहु प्रतच्छ सुजान।।

भारतेन्दु ने इस उद्देश्य की पूर्ति की सम्भावना मात्र उपदेशात्मक वृत्ति में नहीं रखी है, बल्कि उपदेशात्मक वृत्ति छोड़कर जीवन में आचरण अपनाने का संकेत करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि दूसरों के लिये उदाहरण' बनकर ही उद्देश्य पूर्ति की जा सकती है। तभी नारद जी के माध्यम से भारतेन्दु कहलाते हैं कि—"भला पहले जिसने अपने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किये हैं उसकी और बातों पर क्यों विश्वास हो सकता है? शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है। वचन से उपदेशक और क्रियादिक से कैसा भी धर्मनिष्ठ क्यों न हो, पर यदि उसका चरित्र शुद्ध नहीं है तो लोगों में वह टकसाल न समझा जायेगा और उसकी बातें प्रमाण न होंगी।"[3] इसके लिए नारद ने स्पष्ट भी किया है कि निस्सन्देह हरिश्चन्द्र

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला भाग, सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 260
2. उपरिवत्, पृ. 261
3. उपरिवत्, पृ. 264

ही एक ऐसा राजा है जो मन, वचन और कर्म से एक रहता है। यहाँ नाटककार ने अपनी जीवन-वृत्ति का परिचय देकर राजा हरिश्चन्द्र के सत्य एवं दान के आचरण में समानता का उल्लेख सोद्देश्य किया है, क्योंकि वे ब्रिटिश सत्ता के इस दुविधाग्रस्त भारतीय मानस को प्राचीन भारत की उस यश-गाथा से परिचित और सुपरिचित करना चाहते थे, जहाँ अनेकानेक बाधाएँ और समस्याएँ आने पर भी राजा हरिश्चन्द्र जैसे व्यक्ति अपनी अग्नि-परीक्षा में भी अटल रहते हैं तथा अपने आदर्शों से च्युत नहीं होते हैं तभी तो कहा है—

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्री हरिश्चन्द्र कौ, टरै न सत्य विचार।।

इस प्रकार अपने उद्देश्य के लिये कथानक का संयोजन अत्यधिक सबल ढंग से और साभिप्राय रूप में करने में पूर्णतः सफल रहा है।

सत्य हरिश्चन्द्र : जीवन-मूल्य का स्थैर्य

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस नाटक या रूपक 'सत्य हरिश्चन्द्र' में सम-सामयिक परिस्थितियों में तद्युगीन जीवन-मूल्यों के स्थैर्य के लिये संघर्षरत मानव-समाज का चित्रण किया है। ब्रिटिश सत्ता की स्थापना एवं उनकी शोषण-वृत्ति के चरम पर भारतीयों में घटते हुए जीवन-मूल्यों, ब्रिटिशों के पराधीन रहकर पाश्चात्य सभ्यता से अर्धप्रभावित अवस्था में भारतीयता भुला डालने का दुर्योग आदि के साथ सजग, सचेत, बुद्धिमान भारतीयों, भारतीयता के स्थिरीकरण के लिये प्रयत्नशील महानुभावों के प्रयासों से संरक्षित होने वाले जीवन-मूल्यों के स्थैर्य का उल्लेख इस नाटक में सम्भव हो सका है। तभी भारतेन्दु ने नारद के माध्यम से विभिन्न जीवन-मूल्यों का समावेश राजा हरिश्चन्द्र में बताया है कि—"जिसका भीतर-बाहर एक-सा हो और विद्यानुरागिता, उपकारप्रियता आदि गुण जिसमें सहज हों; अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य, सम्पत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिसकी स्थिरता है"....हरिश्चन्द्र में ये सब बातें सहज हैं। दान करके उसको प्रसन्नता होती है और कितना भी दे, पर सन्तोष नहीं होता, यही समझता है कि अभी कुछ नहीं दिया।[1]

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला भाग, सत्य हरिचन्द, पृ. 264-65

जीवन-मूल्यों के स्थैर्य का उल्लेख तो भारतेन्दु ने भली प्रकार सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में किया है जो स्वप्न में दान की हुई वस्तु को सत्य मानकर जागृतावस्था में भी स्वप्न देखे गये प्राप्त को देना राजा हरिश्चन्द्र के जीवन-मूल्यों की पराकाष्ठा का संकेत भर है। यह आदर्श एवं सत्य-प्रतिज्ञता सर्वोच्च एवं उच्च मूल्यों की अभिव्यक्ति ही कही जा सकती है। तभी विश्वामित्र को राज्य सौंपना और दान की दक्षिणा के रूप में अपने आपको, पत्नी और पुत्र को बेचकर धन देना, पत्नी से पुत्र की मृत्यु पर आधा कफन देकर ही अन्त्येष्टि करने की अनुमति देना, पत्नी द्वारा पहचान लिये जाने पर भी कर्त्तव्य के प्रति सचेत रहकर श्मशानपति द्वारा दिये गये निर्देश का पालन करना मानवीय-जीवन में प्रचलित परम्परित जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति ही चरितार्थ करते हैं।

भारतेन्दु ने समसामयिक युग में प्रचलित परम्परित जीवन-मूल्यों को भारतीय जन-जीवन में व्याप्त रूप में रेखांकित करने का सफल प्रयास किया है। यथा—जो अपने निर्मल चरित्र से संतुष्ट हैं, उनके आगे स्वर्ग कौन वस्तु है ? फिर भला जिनके शुद्ध हृदय और सहज व्यवहार हैं, वे क्या यश वा स्वर्ग की लालच में धर्म करते हैं……वे क्या किसी कामना से धर्माचरण करते हैं…… उनके असीम आनन्द के आगे आपके स्वर्ग का अमृत-पान और अप्सरा तो महातुच्छ हैं।[1]

सत्य हरिश्चन्द्र : अन्तः-बाह्य संघर्ष

संस्कृत नाट्य साहित्य एवं नाट्य-शास्त्र में संघर्ष सम्पन्न नाटक का स्वरूप प्रतिपादित नहीं होता। यद्यपि उनमें बाधाओं का उल्लेख अवश्य मिल जाता है, पर उनसे बीज अलक्षित रह जाता है। इसके समानान्तर पाश्चात्य नाट्य-साहित्य एवं पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र में संघर्ष को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है तथा उसे नाटक का आधार भी माना गया है।[2] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' में संघर्ष का यथावश्यक संघर्ष प्रस्तुतकर कथा-विकास करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला भाग, सत्य हरिचन्द्र, पृ. 266-67
2. अ-निकोलस थ्योरी ऑफ ड्रामा, पृ. 92
   आ-जोन्स, हेनरी आर्थर : इण्ट्रोडक्शन टू ब्रूनेशियर लॉ ऑफ ड्रामा, पृ. 29
   इ-चतुर्वेदी, पं. सीताराम : समीक्षा शास्त्र, पृ. 952 पर हेगल के विचार

वस्तुत: आधुनिक हिन्दी नाटक में भी संघर्ष का महत्त्व कम नहीं है, परन्तु भारतेन्दु भारतीय नाटक-साहित्य में संघर्ष के जनक कहे जा सकते हैं। क्योंकि उन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी के आधुनिक नाटकों की सर्जना की है। सत्य हरिश्चन्द्र में संघर्ष के जो तत्त्व मिलते हैं, वह इसी पाश्चात्य नाट्य-चिन्तन की प्रतिफलित कथानकीय सर्जना है। नाटकों में इस संघर्ष के दो रूप—अन्त: और बाह्य—मिलते हैं, अत: संघर्ष हृदयस्थ रहता है तथा वह हृदयान्तर्गत स्फूर्ति, स्पन्दन और उत्तमता सिद्ध करता है जबकि बाह्य-संघर्ष कथा और पात्र के निर्वाचन में निहित होता है। यह कहा जा सकता है कि यह नाटक के कथा-तत्त्व के बाह्य स्वरूप और भौतिक प्रतीति में द्रष्टव्य होता है। इस निकष पर अन्त:संघर्ष पात्रों के अन्तस् और व्यवहार की आन्तरिकता में रहता है।

भारतेन्दु कृत सत्य हरिश्चन्द्र में संघर्ष के अन्त:-बाह्य—दोनों ही स्वरूपों का परिचय मिलता है। सत्य हरिश्चन्द्र के राजा हरिश्चन्द्र में भारतेन्दु ने आरम्भ से लेकर अन्त तक संघर्ष दिखाया है। उनके इस बाह्य और नैरन्तर्य संघर्ष का अन्त नाटक के समापन में ही जाकर होता है। पौराणिक पात्र के रूप में राजा हरिश्चन्द्र आरम्भ से अन्त तक संघर्षरत रहते हैं—यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थिति है, जिसका आकलन भारतेन्दु ने बड़े ही नाटकीय कौशल से किया है। राजा हरिश्चन्द्र के सम्मुख बाह्य संघर्ष का एक संकेत रात के दु:स्वप्न स्मृति में निहित है—"मैं यह सोचता हूँ कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहा पाऊँगा और बिना उसकी थाली उसे सौंपे भोजन कैसे करूँगा।"[1] अन्यत्र उसके संघर्ष की स्थिति देखी जा सकती है—"महाराज! क्षमा कीजिए, मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था। सारी पृथ्वी आपकी, मैं आपका, भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुँह से निकालते हैं (ईषत् क्रोध से) और आप बारम्बार मुझे झूठा न कहिए।"[2]

भारतेन्दु ने सत्य हरिश्चन्द्र के नायक राजा हरिश्चन्द्र को बाह्य संघर्ष का एक अन्य चित्र और प्रस्तुत किया है यथा—दास धर्म के यह विरुद्ध है। इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।[3] इस प्रकार पुत्र का शव श्मशान में देखकर हरिश्चन्द्र बाह्य

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 274
2. उपरिवत्, पृ. 276
3. उपरिवत्, पृ. 305

संघर्ष से घिर जाता है—"क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे। पुत्र, स्वग ऐसा ही प्यारा था तो मुझसे कहते, मैं अपने बाहुबल से तुमको इसी शरीर से स्वर्ग पहुँचा देता ! ... ...आह, मुझसे बढ़कर और कौन मंदभाग्य होगा। धन-जन-कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्र-शोक उपस्थित हुआ ?"[1]

अन्तः संघर्ष 'सत्य हरिश्चन्द्र' के राजा हरिश्चन्द्र के चारित्र्य-विकास का महत्त्वपूर्ण अंग है। राजा हरिश्चन्द्र का अन्तः संघर्ष द्रष्टव्य है—"कैसे कष्ट की बात है, राज-पाट, धन-धाम सब छूटा, अब दक्षिणा कहाँ से देंगे। क्या करें ? ... हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग सकते ?....... पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे, फिर ऋण काढ़े ? पर देंगे कहाँ से ?[2] इसी प्रकार अन्यत्र भी हरिश्चन्द्र का आन्तरिक संघर्ष द्रष्टव्य है—संसार में धन और जन छोड़कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं, पर तुमने उसका भी त्याग कर दिया।"[3] इसी प्रकार—

"हम क्या सोचें ? अपनी अनाथ प्रजा को, या दीन नातेदारों को, ...सूर्यकुल की बहू और चन्द्रकुल की बेटी होकर तुम बेची गईं और दासी बनीं। हा, तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गूँथ सकती थी, उनसे बरतन कैसे मांजोगी ? - ....यह कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा।"[4]

* * * * *

"हा ! इस दुःख की दशा में भी हमसे प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो, पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता.......विधना ने इस दुःख पर भी वियोग दिया। हा, यह वर्षा और यह दुःख ......वह महारानी किस दशा में होगी।"[5]

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 311
2. उपरिवत्, पृ. 283
3. उपरिवत्, पृ. 290
4. उपरिवत्, पृ. 294
5. उपरिवत्, पृ. 301

अपने पुत्र रोहिताश्व का शव देखकर अपने आन्तरिक संघर्ष का उल्लेख डोम बना हुआ राजा हरिश्चन्द्र करता है—"मैंने अपने जान में सब अच्छा ही किया, परन्तु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा, सो मुझे क्षमा करना (फांसी लगाना चाहता है, चौंककर)......यह मैंने क्या अनर्थ-अधर्म विचारा। भला, मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राण त्याग करना चाहा ? ...... अब तो मैं चाण्डाल कुल का दास हूँ।"[1] यही नहीं, कफन की मांग करते हुए कर्त्तव्य पालन की स्थिति में हरिश्चन्द्र का आन्तरिक संघर्ष द्रष्यव्य है—

—"क्या प्रलय काल आ गया ? नहीं, यह बड़ा भारी असगुन हुआ है, इसका फल कुछ अच्छा नहीं, वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा ? हा, न जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा है।"[2]

सत्य हरिश्चन्द्र : पात्र संकलपना

नाटककार सदव अपने समसामयिक प्रश्नों, समस्याओं और परिस्थितियों से जूझता है और उसके निदान और निवारण के लिए समाधान खोजता है। ये समाधान कथानक-चयन के साथ-साथ साभिप्राय पात्र संकलपना के रूप में पावक, दर्शक एवं श्रोता के समक्ष उपस्थित होते हैं। भारतेन्दु ने अपनी समसामयिक परिस्थितियों में भारत के चारित्रिक स्तर में सुधार की उपदेशात्मक वृत्ति-भाव से कथानक को पौराणिक स्रोतों से ग्रहण किया ही; फिर पात्र भी अपनी प्राचीन संस्कृति से सम्पन्न होना अनिवार्य था ही। इसी कारण उन्होंने पात्र-संकलपना के रूप में पौराणिक एवं प्राचीन आख्यानक पात्र लेकर अपनी रचनात्मक एवं सर्जनात्मक संदृष्टि का परिचय दिया है।

सत्य हरिश्चद्र में पात्र-संकलपना के स्तर पर भारतेन्दु ने पात्रों को पौराणिक आख्यान से ही ग्रहण किया है और वे लोक-प्रसिद्धि प्राप्त पात्र भी हैं। इन पात्रों का नामकरण भी भारतेन्दु ने भरतमुनि प्रथित 'गुण कर्मानुसार' नामकरण विधान पर ही किया है। यही कारण है कि नाटक का नायक 'सूर्यकुल संभूत राजा हरिश्चन्द्र' है जो नाटककार की अपनी वृत्तियों का प्रतीक पात्र भी है। भारतेन्दु ने इसे सूर्यवंश का अट्ठाइसवाँ

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 312-13
2. उपरिवत्, पृ. 312

राजा और रामचन्द्र से पैंतीस पीढ़ी पूर्व राजा त्रिशंकु का पुत्र बताया है। इसके कथानायक के समक्ष प्रतिनायक विश्वामित्र हैं जो पौराणिक वृत्त के अनुसार कान्यकुब्ज के क्षत्रिय राजा थे। परन्तु वशिष्ठ से पराजित होकर तप करके ब्राह्मण ही नहीं, बल्कि ब्रह्मर्षि हो गये, तथापि ब्रह्मा के सृष्टिनियंता के समक्ष अपने को भी सृष्टिनियंता सिद्ध करने में असफल रहे। त्रिशंकु को अपने तपोबल से स्वर्ग भेजने का भगीरथ प्रयास भी सर्वविदित है। पौराणिक इन्द्र देवराज हैं और किसी के तपोबल को नष्ट कराने में सदैव सक्रिय रहकर स्वर्ग में किसी को भी स्थान और पद-प्राप्ति से विमुख बनाये रखने के षडयंत्रों में लिप्त रहते हैं। इसके लिए वे अपनी इन्द्र सभा की अप्सराओं की सम्मोहन क्रिया द्वारा तपोबल नष्ट कराने में पीछे नहीं रहते हैं।

नारद भी पौराणिक पात्र के रूप में उपस्थित हैं, पर भारतेन्दु ने 'नारद' के चरित्र की संकल्पना सर्वविदित कलहप्रिय पात्र के रूप में न करके अपनी विशिष्ट पात्र कल्पना में उन्हें 'कलहप्रिय पात्र' के स्थान पर नवीन जीवन चर्या से 'सम्पुष्ट पात्र' के रूप में प्रस्तुत किया है। वे यहाँ कलह कराने वाले न होकर इन्द्र सभा में भी इन्द्र की कार्यप्रणाली को सदोषत: बतानेवाला और सत्याचरण करनेवाले राजा हरिश्चन्द्र के गुण ग्राहक और प्रशंसक के रूप में प्रस्तुत किया है तथा उन्हें विश्वामित्र के साथ इन्द्र को कुटिलतम मित्रता और पर-दु:ख प्रदाता के रूप में व्याख्यायित किया है।

भारतेन्दु ने इन पौराणिक पात्रों के साथ ही धर्म को चाण्डाल एवं कापालिक वेश में राजा हरिश्चन्द्र का सहायक और क्रेता सिद्ध किया है; सत्य धर्म के सेवक के रूप चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त परा-प्राकृत शक्तियों के रूप में भैरव त्रिविधाएँ, वैताल, देवता आदि के अतिरिक्त पिशाच एवं डाकिनी का उल्लेख भी किया है। यही नहीं, भारतेन्दु ने परोक्ष पात्र के रूप में नारायण, शिव-पार्वती, भैरव आदि का संकेत चतुर्थ अंक में किया है।

नाटककार भारतेन्दु ने सम्वादों के माध्यम से ही नहीं बल्कि स्व-कथन से पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है। चरित्र-चित्रण की दो प्रमुख प्रणालियां हैं—परोक्ष एवं प्रत्यक्ष। इसमें से परोक्ष प्रणाली द्वारा अनुपस्थित पात्र की निंदा या प्रशंसा की जाती है। इसी प्रणाली को 'अन्य पुरुष' भी कहा जाता है। भारतेन्दु ने इन्द्र सभा में नारद द्वारा प्रशंसा कराकर राजा

हरिश्चन्द्र के चरित्रोद्घाटन में परोक्ष प्रणाली का आश्रय लिया है; क्योंकि
राजा हरिश्चन्द्र के गुणों का उल्लेख नारद के माध्यम से ही हुआ है। साथ
ही परिस्थितिवश पात्र-निंदा का आश्रय ग्रहण कर परोक्ष प्रणाली में
प्रथम अंक में ही विश्वामित्र द्वारा राजा हरिश्चन्द्र का चरित्रोल्लेख
किया है।

प्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण प्रणाली में उत्तम या प्रथम पुरुष और कहीं
मध्यम पुरुष (अन्य पात्र द्वारा सामनेवाले पात्र की प्रशंसा अथवा निंदा
चरित्र-चित्रण शैलियों का आशय लेकर भाततेन्दु ने राजा हरिश्चन्द्र का
चरित्र-चित्रण किया है। चतुर्थ अंक में राजा हरिश्चन्द्र की प्रशंसा देवताओं
द्वारा कराने में इसी मध्यम पुरुष प्रणाली का प्रश्रय भारतेन्दु ने ग्रहण किया
है। इसके साथ ही भारतेन्दु ने उत्तम या प्रथम पुरुष शैली में प्रत्यक्ष चरित्र
चित्रण प्रणाली के प्रश्रय में हरिश्चन्द्र विश्वामित्र के समक्ष स्वयं अपनी
प्रशंसा करते हुए दिखाये हैं—

चंद्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्री हरिश्चन्द्र कौ, टरै न सत्यविचार।।

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के नायक धीरोदात्त राजा हरिश्चन्द्र हैं जो
कथारम्भ से अन्त तक कथा-परिधि के केन्द्र में विद्यमान और कथान्त में
फलभोक्ता हैं। अतः नाट्यशास्त्रीय परम्परा में वे नाटक के नायक ही सिद्ध
होते हैं। उनका विशिष्ट चरित्र भारतेन्दु की कल्पना-सृष्टि है, जिसमें स्वप्न
में देखे क्रोधी ब्राह्मण को राज्य दान करने के बाद प्रातः चिन्तित राजा
हरिश्चन्द्र उस ब्राह्मण को राज्य देकर ही भोजन करना उचित समझते
और दरबार में उसी प्रकार के क्रोधी ब्राह्मण के आगमन पर कहते हैं कि
मैं तो राज्य पर अधिकार छोड़कर बैठा हुआ हूँ। भारतेन्दु ने अयोध्या के
राजा हरिश्चन्द्र के सत्य-प्रतिज्ञ रूप की यह पराकाष्ठा दिखाई है। राजा
हरिश्चन्द्र के उच्च आदर्शों का भी उल्लेख भारतेन्दु ने पत्नी और पुत्र तथा
स्वयं को बेचकर दासता स्वीकार करनेवाले हरिश्चन्द्र के चरित्र में किया
है, जो लोभ-लालच में नहीं पड़ता, अपितु यह कहकर सिद्धियों को अस्वीकार
कर देता है कि—'जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे
जो कुछ भी मिले, सब स्वामी ही को यह रसद्र दीजिए।'[1]

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 305

राजा हरिश्चन्द्र चाण्डाल वृत्ति धारण कर लेने पर अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा का परिचय भी देता है। भारतेन्दु ने उसके आत्म-बल और चरित्रोत्कर्ष के लिये पत्नी और मृत पुत्र को पहचानने के बाद भी कफ़न का आधा हिस्सा मांगने की कर्त्तव्यपरायणता का संकेत किया है जो वास्तव में अत्यन्त कारुणिक है।

भारतेन्दु ने नारी पात्र के रूप में एकमात्र नारी—शैव्या का चरित्र-चित्रण किया है। भारतीय सती नारी के रूप में शैव्या के चरित्रोत्कर्ष में भारतेन्दु ने विशेष कल्पना द्वारा सहज धर्म-भीरु नारी के रूप में दुःस्वप्न देखने पर परिमार्जन के लिये ब्राह्मण द्वारा प्रदत्त अभिमंत्रित जल का प्रयोग तथा रक्षासूत्र बांधने के लिये तत्पर दिखाया है।[1] अपने समसामयिक परिवेश में नारी चेतना का सजीव भारतीय-नारीत्व दिखाने में भारतेन्दु ने शैव्या से यह स्पष्ट कर दिया है कि वह हरिश्चन्द्र की पवित्रता है तो सेविका का कार्य करने के लिये दासत्व स्वीकार करती है, परन्तु—परपुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और सब सेवा'[2] करने की शर्त वह अवश्य रखती है।

शैव्या कथानायक की पत्नी होने के कारण नाटक की नायिका भी है तथा कथा-विकास की वाटिका होने के साथ-साथ नायक पति के साथ अन्ततः कथा की फलभोक्ता भी है। इस प्रकार सत्य हरिश्चन्द्र नाटक की नायिका के रूप में उसका चरित्र-विकास देखा जा सकता है।

इन्द्र देवराज है, परन्तु पृथ्वीवासियों के तप एवं साधना से उन्नत होते किसी को देख पाना उन्हें अनुचित लगता है। वे ईर्ष्यालु और षड़यंत्र-कारी देवता हैं। तभी राजा हरिश्चन्द्र के दान एवं सत्य के आचरण को देखकर चिन्तित और शंकित हो उठते हैं—हमने माना कि उसको स्वर्ग लेने की इच्छा न हो, तथापि अपने कर्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायेगा।[3]

सत्य हरिश्चन्द्र : रंग-परिकल्पना :

नाट्य-शास्त्रकार भरतमुनि ने नाटक में पारस्परिक सम्वाद पर बहुत ध्यान देकर स्पष्ट किया है कि उत्तम, मध्यम एवं नीच पात्र आपस में

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 271
2. उपरिवत्, पृ. 289
3. उपरिवत्, पृ. 266

किस प्रकार कालानुसार सम्भाषण करें[1] इस हेतु उन्होंने चार प्रकार के सम्वादों का उल्लेख[2] भी किया है—

(1) आकाश वचन (2) जनांतिक
(3) अपवारित (4) आत्मगत

दश रूपककार ने इन्हें दूसरे रूप[3] में प्रस्तुत किया है—

(1) आकाश भाषित (2) सर्व श्राव्य
(3) अश्राव्य या स्वगत (4) नियत श्राव्य-जनोतिक और अपवारित।

भारतेन्दु के समय तीन सम्वाद भेदों[4] का प्रचलन रहा है—

(1) सर्व श्राव्य (2) अश्राव्य या स्वगत
(3) आकाश भाषित।

लेकिन भारतेन्दु ने नाट्य-रचना के लिए इस वर्गीकरण पर विशेष बल न देकर यही कहा है कि—ग्रंथ कर्त्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रों की बातचीत-रचना करे कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो, वैसी ही उसकी बात भी विरचित हो।..........पात्र की बात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है।.......नाटक में वाचालता की अपेक्षा मितभाषिता के साथ वाग्मिता का ही सम्यक आदर होता है।[5] उक्त वक्तव्य के आधार पर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि भारतेन्दु ने नाटक की रंग-कल्पना में सम्वाद को अत्यधिक महत्त्व दिया है।

सत्य हरिश्चन्द्र की रंग-परिकल्पना में सम्वाद पर विशेष ध्यान दिया गया है, पर परम्परा से हटकर भी सम्वाद-परिकल्पना में भारतेन्दु

---

1. भरत मुनि: नाट्य-शास्त्र अध्याय 29, श्लोक 2 से 29; अध्याय 24, श्लोक 55 से 68
2. उपरिवत्, अध्याय 26, श्लोक 79 से 87
3. दशरूपक : अध्याय 1, श्लोक 63-65
4. तिवारी, गोपीनाथ : भारतेन्दु कालीन नाट्य-साहित्य, पृ. 309
5. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहिला भाग पृ. 734

अपने सिद्धान्त के अनुरूप मितभाषिता का पालन नहीं कर पाये हैं। यही कारण है कि इस नाटक में संक्षिप्त सम्वाद योजना न होकर दीर्घ सम्वाद योजना है तथा तृतीय और चतुर्थ अंकों में सुदीर्घ स्वगत या अश्राव्य सम्वाद उपलब्ध होते हैं, क्योंकि यहाँ नाटककार श्मशान वर्णन में अधिक रम गये हैं लेकिन इसका कारण यह भी है कि उस काल में रंगमंचीय व्यवस्था में दृश्य विधान में समय का ध्यान रखना आवश्यक एवं अनिवार्य कौशल माना जाता था तथा दीर्घ सम्वाद बिना ध्वनि-विस्तारक उपकरण के दर्शकों या सहृदयों तक सम्प्रेषित करने के लिये भी आवश्यक हो जाते थे और यह सम्वाद उच्च स्वर से साभिनय पढ़े जाते थे। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में भारतेन्दु ने सुदीर्घ या लम्बे सम्वादों के साथ वस्तुजनक सम्वादों के माध्यम से कथानक के विकास के अवसर जुटाये हैं।[1] यथा—

विश्वामित्र : (प्रकट) स्वस्ति, अब इस महादान की दक्षिणा कहां है ?

हरिश्चन्द्र : महाराज ! जो आज्ञा हो, वह दक्षिणा अभी आती है।

विश्वामित्र : भला, भला दस सहस्र स्वर्ण-मुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी ?

हरिश्चन्द्र : जो आज्ञा (मंत्री से) मंत्री ! दस हजार स्वर्ण-मुद्रा अभी लाओ।

विश्वामित्र : (क्रोध से)……मंत्री कहाँ से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है ? झूठा कहीं का ?……चल, मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा।

हरिश्चन्द्र : (हाथ जोड़कर विनय से) महाराज, ठीक है। खजाना अब सब आपका है मैं भूला, क्षमा कीजिए। क्या हुआ, खजाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है।

इस प्रकार भारतेन्दु कथानक के विस्तार एवं विकास का संकेत करते हैं कि राजा को राज्य दान करने के पश्चात् किस प्रकार स्वर्ण-मुद्रा जुटाने के लिए विवश किया गया है।

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला भाग, पृ. 277

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक की रंग-परिकल्पना में भारतेन्दु ने यथा स्थान रंग-निर्देशन किया है। भारतेन्दु ने विभिन्न पात्रों के मंच पर किये जाने वाले व्यवहार, उसके मनोभाव तथा कार्य सम्पादन का उल्लेख कोष्ठकों के मध्य निर्देशित किया है।[1] यथा—

हरिश्चन्द्र : (पैरों पर गिर के) महाराज! क्षमा कीजिए, मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था। सारी पृथ्वी आपकी, मैं आपका, भला आप ऐसी छुद्र बात मुँह से निकालते हैं (ईषत् क्रोध से) और आप बारम्बार मुझे झूठा न कहिए·······

विश्वामित्र : (क्रोध और अनादरपूर्वक हंसकर) ह ह ह ह! सच है, सच है रे मूढ़। क्यों नहीं, आखिर सूर्यवंशी है तो दे हमारी पृथ्वी।

यही नहीं, भारतेन्दु विविध पात्रों की वेषभूशादि के सम्बन्ध में भी यथा-स्थान संकेत कर पाद टिप्पणियों में पात्र के स्वभाव, रंग, वस्त्रादि के अतिरिक्त मंच सामग्री (स्टेज प्रापर्टी) का उल्लेख किया है कि[2]—"स्पष्ट रूप से परिच्छद का वर्णन किसी स्थान में उल्लिखित नहीं रहता, इससे अभिनय में वेश-रचयिता, पात्रगण का स्वभाव और अवस्था विचार करके वेश-रचना कर दें। नेपथ्य कार्य सुन्दर रूप से निर्वाह के हेतु एक रसज्ञ वेष-विधायक की आवश्यकता रहती है।"

भारतेन्दु ने नाटक निबन्ध में पात्रों की वेशभूषा के सम्बन्ध से संगति को विशेष महत्त्व प्रदान किया है कि[3] "वेश और वाणी दोनों ही पात्र की योग्यतानुसार होनी चाहिए। यदि भृत्यपात्र प्रवेश करें तो जैसे बहुमूल्य परिच्छद उसके हेतु अस्वभाविक है।"

इस प्रकार भारतेन्दु ने पात्र के प्रवेश, वेष, कार्य व्यापार के यथा स्थान संकेत तो किये ही हैं। साथ ही रंग-निर्देशक की भूमिका के निर्वाह के स्तर पर भी अपने नाटक सत्य हरिश्चन्द्र में इस सिद्धान्त की परिपालना रंग-कल्पना के अन्तर्गत कर उन्होंने रचना को सटीक बनाया है[4]—

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहला भाग, पृ. 276-77
2. उपरिवत्, पृ. 735
3. उपरिवत्, पृ. 738
4. उपरिवत्, पृ. 304

(विमान पर बैठी हुई तीनों महा विद्याएँ*आती हैं)—लिखकर पाद-टिप्पणी (फुटनोट) में उल्लेख किया है—"ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेश में पर-स्त्री का श्रृंगार। खेलने में चित्रपट द्वारा परदे के ऊपर इनको दिखलावेंगे और इनकी ओर से बोलने वाला नेपथ्य में से बोलेगा।"

सत्य हरिश्चन्द्र : शैल्पिक-परिकल्पना :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने युग और अपने भारतेन्दु मण्डल के नाटककारों के लिये नवीन नाट्य-शास्त्र की रचना करके परम्परागत पूर्वी-नाट्य-व्यवस्था और पाश्चात्य नाट्य-व्यवस्था के संयोजन की महत्ता सिद्ध की तथा नाटक के रंग शिल्प के वैशिष्ट्य का विस्तार किया। भारतेन्दु ने पात्रानुकूल भाषा को ही महत्त्व दिया है और स्पष्ट किया है कि[1]—"वेश और वाणी दोनों ही पात्र की योग्यतानुसार होनी चाहिए। यदि भृत्यपात्र प्रवेश करें तो ...... पण्डितों के सम्भाषण की भांति विशेष संस्कृत गर्भित भाषा भी उसके लिए अस्वाभाविक होगी।" यह कहना अधिक उपयुक्त है कि अपने समकालीनों के मध्य भारतेन्दु ने खड़ी बोली हिन्दी का भाषा-श्रृंगार करने में कोई कमी नहीं की है; भले ही खड़ी बोली अपनी आरम्भिक और सतत् निर्माणावस्था में थी। अतः उसमें कतिपय भाषित दोष मिलना अस्वाभाविक नहीं है। फिर भी भाषा सुन्दर और प्रवाहमय बनाये रखने में भारतेन्दु पीछे नहीं रहे हैं।

नाटक में स्वाभाविकता उत्पन्न करने के लिए योग्यता, प्रवृत्ति, स्वाभाविकता और व्यवहार के आधार पर पात्रों की भाषा में परिवर्तन करना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने युक्तियुक्त माना है। नौकर और स्वामी, ग्रामीण और नागरिक की भाषा कदापि एक नहीं हो सकती। उसी प्रकार स्त्री एवं पुरुष की भाषा उनकी प्रवृत्ति और पात्रता के अनुसार परिवर्तित होती है। अतः भाषा पात्र के अनुसार ही स्वाभाविक बनती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारतेन्दुकालीन नाटकों की भाषा पात्रों, उनके देश, प्रान्त और जाति वर्ग के आधार पर प्रयुक्त की गई है। यथा—[2]

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहला भाग, पृ. 260
2. उपरिवत्, पृ. 260

नटी : मैं ता आप ही आती थी। वह एक मनहारिन आ गई थी, उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती। ......

*　　*　　*　　*

नटी : हम लोगों को तो सत्य हरिश्चन्द्र आज कल अच्छी तरह याद है और उसका खेल भी सब छोटे-बड़े को मंज रहा है।

सूत्र० : ठीक है यही हो। भला इससे अच्छा और कौन नाटक होगा।

इसी प्रकार ऋषिवर नारद और इन्द्र की भाषा का परिचय निम्नस्थ रूप में मिलता है—

नारद : आपको इतना शिष्टाचार नहीं सोहता। आप देवराज हैं और आपके संग की तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इच्छा करते हैं, फिर आपको सत्संग कौन दुर्लभ है। ......

इन्द्र : हमको बड़ा शोच है कि आपने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा। क्षमा कीजिए, आपसे हम बनावट नहीं करते।

*　　*　　*　　*

नारद : अयोध्या से ! अहा, राजा हरिश्चन्द्र धन्य है। मैं तो उसके निष्कपट और अकृत्रिम स्वभाव से बहुत सन्तुष्ट हुआ।

भारतेन्दु ने सत्य हरिश्चन्द्र में भाषा-प्रयोग का जो कौशल दिखलाया है उसे हम निम्न आधारों पर विवेचित कर सकते हैं—

(अ) शब्द चयन　　(आ) वाक्य विन्यास
(इ) लोकोक्ति-मुहावरा　　(ई) काव्यात्मकता

शब्द चयन—भारतेन्दु कृत सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में शब्द चयन में संस्कृत के तत्सम, तद्भव शब्दों का प्रयोग बहुलता के साथ मिलता है जो नाटक की साहित्यिकता में सहायक है। तत्सम शब्दावली में सन्ध्या, गुणज्ञ, विद्या, प्रकाश, प्रवृत्त, एकत्र, अपेक्षा, बुद्धि, आख्यान, करुणापूर्ण परीक्षा, दुर्लभ, शिष्टाचार, सत्संग, दर्शन, निष्कपट, अकृत्रिम, मूर्त्ति, निस्संदेह, मनुष्य, उत्पन्न, स्मरण, पराधीन, हृदय, गुणग्राही, उत्कट, कीर्त्ति, ईर्ष्या,

निश्चय, दृढ़, प्रमाण, धर्मनिष्ठ, महात्मा, दुरात्मा, आशय, विद्यानुरागिता, उपकारप्रियता, स्थिरता, सृष्टि, निश्चला भक्ति, भूषण, मुखचन्द्र, मलित, दुःस्वप्न, शास्त्र, अर्द्धांगिनी, प्रत्यक्ष, अज्ञात-नाम-गोत्र, ईश्वरेच्छा, ज्ञात, क्षत्रियाधम, त्रैलोक्य, राजप्रतिग्रहपरांमुख, कृपाण, दीर्घतपोवर्द्धित, स्वर्ण-मुद्रा, सहस्र, दक्षिणा, उऋण, पुण्यशील, वृत्तान्त, सिद्धि, सत्य, राज्यभ्रष्ट, सत्यभ्रष्ट, महानुभावता, वरंच, कृतार्थ, विक्रय, दण्ड, दुष्कर, आर्य, उच्छिष्ट, कृपा, धाराप्रवाह, अग्निहोत्र, अग्नि, ऋणमुक्त, वज्र हृदय, विदीर्ण, दुर्गति, सर्वभाव, बटुक, अस्ताचल, दारुण, व्यसन, संस्कार, निस्सार, वीभत्स, अभिषेक, ध्वजा, पद्मिनी वल्लभ, प्रवर्त्तक, स्वच्छन्द, स्नेह, श्मशान, अत्यन्त, आश्चर्य, उल्लंघन, पुरश्चरण, निषेध, अनुग्रह, स्वतन्त्र, सद्य, शिथिल, निष्करुण, अवलम्ब, मंदभाग्य, आयुष वज्र, दुष्कर्म, मर्त्यलोक, सौभाग्य, अस्तित्व, पर्यन्त, एवमस्तु, मार्जन उत्तमता, क्षुद्राशय, दरिद्र, आदरणीय, रुष्टता, स्तुति, प्रसंग, तेजोभ्रष्ट, व्याकुलता, धैर्य, व्यर्थ, यथा-योग्य, क्षय, उपार्जन, याचक, सर्वस्व, अभिमंत्रित, परिहास, निर्मल, चरणार-विन्द, क्षुद्रता, अनुष्ठान, महातुच्छ, कृत्य आदि।

तद्भव शब्दावली में कौतुक, बखेड़ा, खेल, प्यारे, हरिचंद, प्रतच्छ, मसान, हूजिए, सांझ, दूजो, पक्का, बेर, लड़कपन, बरतन, सपने, बनावट, ऊँचा, बड़ाई, डाह, बिगाड़, सुवर्ण, धनधाम, माता, भीड़, कमती, काहे का, व्यौहार, उपाय, सिपारिसी, गाहक, चिराइन, लाग, लोलक, हड्डी, थापे, सियार, दोपहर, परकटे, आंच, कीलन, कै, राजपाट, घर-बार, राज, दानी-पन, जग, सोहाग, कुंवर, आँचल, फेरकर, बरसात का होनहार, बिपत, बुढ़ौती, गुनी, साँप, कोख, गोद, भरोसे, छलिया, महात्म, भेस, सम्हाल, बाजे, निरी, धीरज, थाती, डौंडी, राजकाज, आसन, पैर, मोल, तू, तैंने, धिक्कार, तैं, तेरे, मूढ़, मुँह, तेरा, बेचकर, धुनि, भभूत, भई, ठिकाना, आछत, आंख, लच्छन, जोतसी, गुनी, पोथी-पत्रा, दुखिया, असगुन, निपूती, लपट, स्वारथी, धरम आदि।

उर्दू भाषा की शब्दावली भी कहीं-कहीं उपलब्ध होती है यथा— लोग, बेपरवाह, बाकी, राज, खैरखाही, याद, सलाह, रूखापन, कामकाज, कलेजा, मुहर, हजार, खजाना, नगीना, लहनदार, (लेनदार) लहू, बाजार, मोहर, कामकाजी, बदा, सन्दूक, नातेदार, खबरदार, चरबी, डैना, मुर्दा, लोहू, डोम, कफ़न, सन्नाटा, मालूम, अर्थी, आसिरा, दफा।

लोक-भाषा की शब्दावली का प्रयोग भी एक दो स्थलों पर भारतेन्दु ने किया है—

(1) हरजनवां ! मोहर का सन्दूक ले श्राया है न ।
(2) क चौधरी मोहर ले के का कर बो ।
(3) तोह से का काम पूछै से ।
(4) पचास सौ मोहर लेब ।

लोकोक्ति एवं मुहावरा—भारतेन्दु ने यथा स्थान भाषा-शृंगार की वृत्ति के लिये लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग भी किया है—

(1) किस चिड़िया का नाम है,
(2) गाल बजाना,
(3) मुँह देखा व्यापार,
(4) कान खोलकर सुनना,
(5) पर्वत भी तिल-सा दिखना,
(6) एक देकर परलोक में दो की श्राशा,
(7) जली-कटी बोलना,
(8) कलेजा काँपना,
(9) श्रांचल पसारना,
(10) बात मुँह से निकालना,
(11) स्त्री की बुद्धि ही कितनी,
(12) नगर में डौंडी पिटवाना,
(13) जड़ खोदना,
(14) जड़ काटना,
(15) हाथ पसारना,
(16) मुँह न दिखाना,
(17) पच मरना,
(18) सिर श्राँखों पर रखना,
(19) बोलती चिड़िया उड़ना,
(20) छाती ठण्डी होना,
(21) मुँह देखकर जीना,
(22) कलेजा फटना,
(23) प्राण मुँह में श्राना ।

सूक्ति-प्रयोग—सत्य हरिश्चन्द्र ने भारतेन्दु ने कई स्थलों पर सूक्ति प्रयोग भी किया है—

(1) काल बड़ा बली है।
(2) दूसरों की उत्कट कीर्ति से ईर्ष्या होती है।
(3) बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे-बड़े सभी मानें।
(4) शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है।
(5) युद्ध में जिसकी स्थिरता है, वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है।
(6) वह राजा कुल का कलंक है, जिसने बिना पात्र विचारे दान देते सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया।
(7) न्याय का मूल सत्य है।
(8) ईर्ष्या करना तो क्षुद्राशयों का काम है।
(9) बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता।
(10) बड़ा वही है जिसका चित्त बड़ा होता है।
(11) स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है।
(12) मरने के पीछे यह संसार भी असत्य है।
(13) यह सब कर्म की गति है।
(14) दु:ख से दु:ख जाता है।

वाक्य विन्यास—खड़ी बोली के साहित्यिक भाषा रूप का यह प्रारम्भिक युग था और वाक्य-विन्यास का वह प्रांजल रूप जो आज मिलता है, वह निर्माणकालीन स्थिति में था। भारतेन्दु ने भाषा के उक्त नव-निर्माण में योग दिया। जहाँ राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की परवर्ती उर्दू शब्दावली से आक्रान्त भाषा के स्थान पर, उन्हें अपना गुरु मानते हुए भी भारतेन्दु ने उस भाषा को ऐसा रूप दिया जिससे वह उर्दू से टक्कर लेने में समर्थ हुई तथा उसमें निहित लालित्य को परवर्ती लेखकों ने समझा।

भारतेन्दु की भाषा शुद्ध एवं आदर्श थी और उनकी वाक्य-रचना समसामयिक स्तर पर उपयुक्त थी। भारतेन्दु बाबू की वाक्य-रचना निम्न रूप में देखी जा सकती है—

—धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहाँ के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है, इतना भी नहीं जानते थे।[1]

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला भाग, सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 259

—मैं तो आप ही आती थी।[1]

—फिर भी इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को सन्देह होता है कि इन्हें राजकाज देखने की छुट्टी कब मिलती है।[2]

उपर्युक्त वाक्यों के उदाहरणों से यह अवश्य विदित होता है कि उस युग में संक्षिप्त वाक्य-रचना का प्रायः अभाव था, दीर्घ और मिश्रित वाक्य-रचना की प्रधानता थी। भारतेन्दु ने इन वाक्यों में भाषा के स्तर पर खड़ी बोली हिन्दी की शब्दावली का ही संचयन किया। अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी भाषा के निर्माण में उनका योगदान आज भी महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक प्रतीत होता है।

काव्यात्मकता :

भारतेन्दु ने सत्य हरिश्चन्द्र नाटक मूलतः गद्य-भाषा में लिखा है, किन्तु वे अपने काव्यत्व-मोह को नहीं छोड़ पाये हैं और न पारसी थियेटर के गद्य-पद्यात्मक रचना-विधान को ही। इसीलिये उनके इस नाटक में काव्यात्मक लय का प्रवाह भी देखा जा सकता है।

—शोच की बात है कि/जो बड़े-बड़े लोग हैं/और/जिनके लिये कुछ/हो सकता है/वे ऐसी/अन्ध परम्परा में/फंसे हैं और/ऐसे बेपरवाह/और/अभिमानी हैं कि/सच्चे गुणियों की/कहीं पूछ ही नहीं है।[3]

नाटककार भारतेन्दु की काव्यात्मक रुझान का परिचय नाटक में सर्वत्र मिलता है। नांदी पाठ या मंगलाचरण के बाद सूत्रधार कई स्थलों पर दोहों का प्रयोग कर नाटककार हरिश्चन्द्र का गुणोल्लेख करता है। द्वितीय अंक में ब्राह्मण श्लोक-वाचन करता है, नेपथ्य में वैतालिक राग भैरव में ब्रजभाषा की काव्यात्मकता चरितार्थ करते हैं। स्वयं राजा हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र भी काव्यात्मक युक्तियों का प्रयोग करते हैं। इसी

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहला भाग, सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 260
2. उपरिवत्, पृ. 264
3. उपरिवत्, पृ. 259

प्रकार तृतीय अंक में हरिश्चन्द्र काशी की शोभा का सुदीर्घ वर्णन भी काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। चतुर्थ अंक में भी इसी प्रकार की काव्यात्मकता निर्वाहित की गई है।

शैली :

भारतेन्दु युग हिन्दी की गद्य शैली का प्रयोग-काल कहा जा सकता है। अतः इस युग का साहित्यकार-नाटककार विविध प्रकार की शैलियों का प्रयोग करते हुए किसी निश्चित शैली की खोज में यत्नशील दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु ने भी हिन्दी नाटकों में कई प्रकार की शैलियाँ अपनायी हैं। इस युग में सभी प्रचलित नाट्य-शैलियों का प्रयोग हुआ है। तथापि नाटककार इन शैलियों के प्रयोग के अतिरिक्त अपनी स्वतन्त्र शैली का मार्ग खोज रहे थे। भारतेन्दु ने नाटक नामक आलेख में हिन्दी के नवीन नाट्य-शास्त्र की स्थापना का प्रयास करते हुए कहा है कि—"स्वदेशीय तथा भिन्नदेशीय सामाजिक रीति, व्यावहारिक रीति पद्धति का निदान फल और परिणाम इन तीनों का विशिष्ट अनुसंधान नाटक-रचना का उत्कृष्ट उपाय है।"[1]

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक पौराणिक आख्यान पर आद्धृत है। अतः उसमें चरित्रोद्घाटक शैली का ही प्रयोग मिलता है। स्वगत कथन, विवरणात्मक, आत्म चिन्तनात्मक शैलियों का भी यथास्थान उल्लेख है। नाटक प्रस्तुतीकरण में सूत्रधार शैली का प्रयोग प्राचीन पद्धति पर ही किया गया है। नाटक मूलतः काव्य (दृश्य) का ही एक अंग है और विशिष्ट प्रकार का अंग होते हुए भी काव्यात्मक व्यंजना शैली से सम्पन्न है।

निश्चय ही 'सत्य हरिश्चन्द्र' पौराणिक आख्यानपरक नाट्य-रचना होते हुए भी युगीन समस्याओं और परिस्थितियों में सत्याचरण की आवश्यकता और उदार मानवीय दृष्टि की स्थापना से चारित्र्य-सुधार की अपेक्षाओं में अपनी सृजनात्मकता और गहन सम्वेदनशीलता लिये हुए है। सत्य हरिश्चन्द्र की सर्जना से भारतेन्दु के नाटक, नाट्य-कला, रंगमंच-कला, नाट्य-भाषा से संक्रमणशीलक स्वरूप आदि का गहरा परिचय पाठकों को मिलता है। निस्सन्देह भारतेन्दु आज भी प्रासंगिक होकर नाटक और रंगमंच की दृष्टि से ऐतिहासिक सन्दर्भ-पुरुष के रूप में हमारे समक्ष आते हैं।

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहला भाग, पृ. 138

यह नाटक आज भी अपनी अनेक रंगमंचीय कलात्मक अभिव्यक्तियों की सम्भावनाओं से सम्पन्न है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम इन नाटकों के मंचन में अपनी वर्तमान वैज्ञानिक नाट्य-विद्या और निर्देशकीय कौशल का प्रयोग करें।

— विजय कुलश्रेष्ठ

हिन्दी विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय
नैनीताल - 263 003

सत्य हरिश्चन्द्र*

□

---

* एक रूपक, चार खेलों में श्री हरिश्चन्द्र लिखित श्रीयुत् बाबू बालेश्वर प्रसाद बी.ए. की आज्ञानुसार काशी पत्रिका नामक पाक्षिक हिन्दी पत्र से संग्रहित—बनारस, निउ मेडिकल हाल प्रेस में सन् 1876 में छापा गया।

उपक्रम

मेरे मित्र बाबू बालेश्वरप्रसाद बी.ए. ने मुझ से कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लड़कों को पढ़ने-पढ़ाने के योग्य हो। क्योंकि शृंगार रस के आपने जो नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं, लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्हीं की इच्छानुसार मैंने यह सत्य हरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है। इसमें सूर्य कुल सम्भूत राजा हरिश्चन्द्र की कथा है। राजा हरिश्चन्द्र सूर्य वंश का अट्ठाइसवाँ राजा रामचन्द्र के 35 पीढ़ी पहले राजा त्रिशंकु का पुत्र था। इसने शौभपुर नामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इसकी कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपालदेव के समय में आर्य्य क्षेमीश्वर कवि ने चण्ड-कौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द्र के चरित्र में बनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए। क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य ग्रंथ में इसका नाम लिखा है। कौशिक—विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। वह एक बेर संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब वशिष्ठ ने सैन समेत उसकी जाफत अपनी शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूमधाम से की तो विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और गऊ के बदले भी वशिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना का नाश कर दिया और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिए। विश्वामित्र इस पराजय से उदास होकर तप करने लगे और महादेव जी से वरदान में सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आए। वशिष्ठ ने मंत्र के बल से एक ऐसा ब्रह्म दंड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। हार कर विश्वामित्र ने सोचा कि अब तप करके ब्राह्मण होना चाहिए और तप करके अंत में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गए। यह बालमीकीय रामायण के अयोध्या कांड के 52 से 60 सर्ग तक सविस्तार वर्णित है।

जब हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठ जी से कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह अशक्य काम हम से न होगा। तब त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उन से भी कोरा जवाब पाया। तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं किया और हम को कोरा जवाब दिया। इससे अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट होकर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चाण्डाल होजा। बिचारा त्रिशंकु चाण्डाल बन कर विश्वामित्र के पास गया और दुःखी होकर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने बैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोचकर राजा से प्रतिज्ञा किया कि इसी देह से तुम को स्वर्ग भेजेंगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आए पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आए और कहा कि जहाँ चाण्डाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित हों वहाँ कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट होकर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देखकर और बिचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मंत्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञ में भाग लेने न आए तो विश्वामित्र ने क्रोध से श्रुवा उठाकर कहा कि त्रिशंकु यज्ञ से कुछ काम नहीं; तुम हमारे तपोबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आना चाहता है तो पुकारा कि अरे तू यहाँ आने के योग्य नहीं है। नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा होकर नीचे गिरा और विश्वामित्र से त्राहि-त्राहि पुकारा। विश्वामित्र ने तप बल से उसको वहाँ बीच ही में स्थिर रखा। कर्म्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्होंने नए बनाए और बहुत से जीव-जंतु, फल-मूल बनाकर जब इन्द्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डर कर इनसे क्षमा मांगने गए। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रखकर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भाँति प्रकाशमान स्थिर रखकर क्षमा किया। यह सब भी रामायण ही में हैं। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा इससे बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चाण्डाल के घर भीख माँगने गए और जब कुत्ते का माँस पाया तो उसी से देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इन के भय से काँप गए और इन्द्र ने उसी समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शांति पर्व्व के 141 अध्याय में है। फिर हरिश्चन्द्र की विपत्ति सुनकर क्रोध से वशिष्ठ जो ने उनको शाप दिया

कि तुम बकुला हो जाम्रो ग्रौर विश्वामित्र ने यह सुनकर वशिष्ठ को शाप दिया कि तुम ग्राड़ी हो जाग्रो। पक्षी बनकर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया जिससे त्रैलोक्य कांप गया। अन्त में ब्रह्मा ने दोनों से मेल कराया। यह उपाख्यान मारकंडेय पुरान के नवें ग्रध्याय में है। इनकी उत्पत्ति यों है—भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को ब्याह किये देखा तो बड़े प्रसन्न हुए ग्रौर बेटा-बहू देखने को उनके घर ग्राए। उन दोनों ने पिता की पूजा किया ग्रौर हाथ जोड़ कर सामने खड़े हो गए। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी वर मांग। सत्यवती ने यह वर मांगा कि मुझे तो वेद शास्त्र जानने वाला ग्रौर मेरी माता को युद्ध विद्या विशारद् पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कह कर ध्यान से प्राणायाम किया ग्रौर उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए। भृगु ने वह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में ग्रश्वत्थ का ग्रालिंगन करके खाय ग्रौर तुम यह सफेद चरु उसी भांति उदुम्बर का ग्रालिंगन करके खाना। भृगु के वाक्यानुसार सत्यवती ने कन्नौज के राजा गाधि की स्त्री ग्रपनी माता से कहा। उसकी माता ने यह समझकर कि ऋषि ने ग्रपनी पतोहू को ग्रच्छा बालक होने का चरु दिया होगा; जब ऋतु काल ग्राया तब लाल चरु तो कन्या को खिलाया ग्रौर सफेद ग्राप खाया। भगवान भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो ग्राकर बहू से कहा कि तुमने चरु को उलट-पुलट किया, इससे तुम्हारा लड़का ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय कर्म्म होगा ग्रौर तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हो जाएगा। सत्यवती ने जब ससुर से ग्रपराध की क्षमा चाही तब उन्होंने कहा कि ग्रच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रिय कर्म्मा होगा। वही राजा गाधि को विश्वामित्र हुए ग्रौर च्यवन को जमदग्नि ग्रौर जमदग्नि को परशुराम हुए। यह उपाख्यान कालिका पुराण के 84वें ग्रध्याय में स्पष्ट है।

इन उपाख्यानों के जानने से इस नाटक के पढ़ने वाले को बड़ी सहायता मिलेगी। इसी भारतवर्ष में उत्पन्न ग्रौर इन्हीं हम लोगों के पूर्व्व पुरुष महाराजा हरिश्चन्द्र भी थे ग्रौर यह समझकर इस नाटक के पढ़ने वाले कुछ भी ग्रपना चरित्र सुधारेंगे तो कवि का परिश्रम सुफल होगा।

समर्पण

नाथ !

यह एक नया कौतुक देखो । तुम्हारे सत्यपथ पर चलने वाले कितना कष्ट उठाते हैं, यही उसमें दिखाया गया है । भला हम क्या कहें ? जो हरिश्चन्द्र ने किया वह तो अब कोई भी भारतवासी न करेगा; पर उस वंश ही के नाते इनको भी मानना । हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं, पर तुम्हारी तो बहुत कुछ है । बस इतनी ही सही । लो सत्य हरिश्चन्द्र तुम्हें समर्पित है—अंगीकर करो । छल मत समझना, 'सत्य' शब्द सार्थ है कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं है ।

ज्येष्ठ सुदी ५, सं. १९३३

तुम्हारा,
हरिश्चन्द्र

सत्य हरिश्चन्द्र : एक रूपक

प्रथम अंक	:	इन्द्र सभा
द्वितीय अंक	:	हरिश्चन्द्र की सभा
तृतीय अंक	:	काशी में विक्रय
चतुर्थ अंक	:	श्मशान

"अथ सत्य हरिश्चन्द्र"

(मंगलाचरण)



सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघ हर सुख कन्द ।
जनहित कमला तजन जय शिव नृप कवि हरिचन्द[1] ॥1॥

---

1. यह श्लेष शिवजी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि पांच का वर्णन करता है ।

(नान्दी के पीछे सूत्रधार[1] आता है)

सूत्रधार : अहा ! आज की सन्ध्या भी धन्य है कि पूछ ही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह इतने में गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सबकी इच्छा है कि हिन्दी भाषा का कोई नवीन नाटक देखें। धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहाँ के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे, भला वहाँ अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त हुई। परन्तु हा ! शोच की बात है कि जो बड़े-बड़े लोग हैं और जिनके किए कुछ हो सकता है वे ऐसी अन्धपरम्परा में फँसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं बात है जिन्हें झूठी खैरखाही दिखाना वा लम्बा चौड़ा गाल बजाना आता है। (कुछ सोच कर) क्या हुआ, ढंग पर चला जायगा तौ यों भी बहुत कुछ हो रहैगा। काल बड़ा बली है, धीरे-धीरे सब आप से आप ही कर देगा। पर भला आज इन लोगों को लीला कौन-सी दिखाऊँ। (सोच कर) अच्छा उनमें भी तो पूछ लें ऐसे कौतुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है। (नेपथ्य की ओर देख कर) मोहना ! अपनी भाभी को जरा इधर तो भेजना।

(नेपथ्य में से—'मैं तो आप ही आती थी' कहती हुई नटी[2] आती है)

नटी : मैं तो आप ही आती थी। वह एक मनिहारिन आ गई थी उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती। कहिए आज जो लीला करनी हो वह पहिले ही से जानी रहै तौ मैं और सभी से कह के सावधान कर दूँ।

---

1. सूत्रधार हरे वा नीले रंग की साटन का कामदार जांघिया पहिने उस के आगे पटुके की तरह कमरबन्द के दोनों किनारे नीचे ऊपर लटकते हुए, गले में चुस्त सामने बुताम की मिरजाई, ऊपर माला वगैरह और सब गहिने सिर पर टिपारा, पैर में घुंघरू, हाथ में छड़ी, वा पैजामा, काछनी सिर पर मुकुट।
2. महाराष्ट्री भेष, कमर पर पेटी कसे, वा मर्दाना कपड़ा पहिने, पर जेवर सब जानने।

सूत्रधार : आज का नाटक तो हमने तुम्हारी ही प्रसन्नता पर छोड़ दिया है।

नटी : हम लोगों को तो सत्य हरिश्चन्द्र आज कल अच्छी तरह याद है और उसका खेल भी सब छोटे-बड़े को मज रहा है।

सूत्रधार : ठीक है यही हो। भला इससे अच्छा और कौन नाटक होगा। एक तो इन लोगों ने उसे अभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणा पूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उसका कवि भी हम लोगों का एक मात्र जीवन है।

नटी : (लम्बी सांस लेकर) हा ! प्यारे हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण रूप न समझा। क्या हुआ।

कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि-भरि।
पाछे प्यारे हरिश्चन्द की कहानी रहिजायगी ।।2।।

सूत्रधार : इसमें क्या सन्देह है। काशी के पण्डितों ही ने कहा है।

सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचन्द।
जिमि सुभाव दिन रैन के कारन नित हरिचन्द[1] ।।3[2]।।

और फिर उनके मित्र पण्डित शीतलाप्रसाद जी ने इस नाटक के नायक से उनकी समता भी किया है इससे उनके बनाए नाटकों में भी सत्य हरिश्चन्द्र ही आज खेलने को जी चाहता है।

नटी : कैसी समता मैं भी सुनूँ।

सूत्रधार : जो गुन नृप हरिचन्द मैं जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचन्द मैं लखहु प्रतच्छ सुजान ।।4।।[3]

---

1. हरि—सूर्य।
2. "विद्वज्जनप्रतिष्ठा कारणमेवं हरिश्चन्द्रः यद्वत् स्वभावगत्वादिन रात्योर्वा हरिश्चन्द्रः।"
3. "श्रूयन्ते ये हरिश्चन्द्रे जगदाल्हादिनो गुणा। दृश्यन्ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शने।।"

(नेपथ्य में)

यहाँ सत्यभय एक के कांपत सब सुर लोक ।
यह दूजो हरिचन्द को करन इन्द्रउर सोक ।।2।।

सूत्रधार : (सुनकर और नेपथ्य की ओर देख कर) यह देखो ! हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बन कर आ पहुँचा । तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना

प्रथम अंक

[बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ/इन्द्र[1] आता है]

इन्द्र : ('यहाँ सत्यभय एक के' यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर उधर घूमता है)

(द्वारपाल[2] आता है)

द्वारपाल : महाराज ! नारद जी आते हैं।

इन्द्र : आने दो अच्छे अवसर पर आए।

द्वारपाल : जो आज्ञा। (जाता है)

इन्द्र : (आप ही आप) नारद जी सारी पृथ्वी पर इधर-उधर फिरा करते हैं इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा। हमने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि उस के धर्म्म की एक बेर परीक्षा तो लेनी चाहिए।

(नारदजी[3] आते हैं)

इन्द्र : (हाथ जोड़कर दंडवत करता है) आइए-आइए धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़े।

नारद : हमें और भी कोई काम है, केवल यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ—यही हमें है कि और भी कुछ।

इन्द्र : साधु स्वभाव ही से परोपकारी होते हैं। विशेष कर के आप ऐसे जो हमारे से दीन गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते

---

1. जामा, क्रीट, कुण्डल और गहने पहने हुए, हाथ में ब्रज कई फल का छोटा भार्ला लिए हुए।
2. छज्जेदार पगड़ी, चमकन, घेरदार पाजामा पहने कमरबन्द कसे और हाथ में असा लिये हुए।
3. धोती की लांग कसे, गाती बाँधे, सिर से पांव तक चंदन का और दिए, पैर में घुंघरू, सिर के बाल छुटे, और हाथ में बीना लिए हुए। आने और जाने के समय 'राम कृष्ण गोविन्द' की ध्वनि नेपथ्य में से हो।

रानी : अरी ? आज मैंने ऐसे बुरे-बुरे सपने देखे हैं कि जब से सो के उठी हूँ कलेजा कांप रहा है । भगवान् कुसल करे ।

सहेली : महाराज के पुण्य प्रताप से सब कुसल ही होगी । आप कुछ चिन्ता न करें । भला क्या सपना देखा है मैं भी सुनूँ ?

रानी : महाराज को तो मैंने सारे अंग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बाल खोले, और (आँखों में आँसू भर कर) रोहितास्व को देखा है कि उसे साँप काट गया है ।

सहेली : राम ! राम ! भगवान् सब कुसल करेगा । भगवान् करे रोहितास्व जुग-जुग जिए और जब तक गंगा-जमुना में पानी है आप का सोहाग अचल रहे । भला आप ने इसकी शांति का भी कुछ उपाय किया है ।

रानी : हां, गुरुजी से तो सब समाचार कहला भेजा है देखो वह क्या करते हैं ।

सहेली : हे भगवान्, हमारे महाराज-महारानी कुंअर सब कुसल से रहें, मैं आंचल पसार के यह वरदान मांगती हूँ ।

(ब्राह्मण आता है)[1]

ब्राह्मण : (आशीर्वाद देता है)

स्वस्त्यस्तुतेकुशलमस्तुचिरायरस्तु
गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु ।
ऐश्वर्यमस्तुकुशलोस्तुरिपुक्षयोस्तु
सन्तानवृद्धिसहिताहरिभक्तिरस्तु ।।

रानी : (हाथ जोड़कर प्रणाम करती है)

ब्राह्मण : महाराज गुरुजी ने यह अभिमंत्रित जल भेजा है इसे महारानी पहिले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा सा पान

---

1. धोती, उपरना, सिर पर चुन्दी वा सिर भर बाल, डाढ़ी हाथों में पवित्री, तिलक, खड़ाऊँ ।

भी कर लें और यह रक्षाबंधन भेजा है इसे कुमार रोहितास्व की दाहिनी भुजा पर बांध दें फिर इस जल से मैं मार्जन करूंगा ।

रानी : (नेत्र में जल लगाकर और कुछ मुँह फेरकर आचमन करके) मालती यह रक्षाबन्धन तू सम्हाल के अपने पास रख, जब रोहितास्व मिले उसके दाहिने हाथ पर बाँध दोजियो ।

सहेली : जो आज्ञा (रक्षाबन्धन आने पास रखती है) ।

ब्राह्मण : तो अब आप सावधान हो जायं मैं मार्जन कर लूँ ।

रानी : (सावधान होकर) जो आज्ञा ।

ब्राह्मण : (दुर्बा से मार्जन करता है ।

देवास्त्वामभिषिचन्तुब्रह्मविष्णु शिवादय:
गन्धर्व्वा: किन्नरा: नागा: रक्षां कुर्व्वन्तुतेसदा
पितरोगुह्यकायक्षा: देव्योभूताचमातर:
सर्व्वत्वामभिषिचन्तुरक्षांकुर्वन्तुतेसदा
भद्रमस्तुशिवंचास्तुमहालक्ष्मीप्रसीदतु
पतिपुत्रयुतासाध्विजीत्ववं शरदांशतं ।।

(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंककर)

यत्पापंरोगमशुभंतद्दूरेप्रतिहतमस्तु

(फिर रानी पर मार्जन करके)

यन्मंगलंशुभं सौभाग्यंधनधान्यमारोग्यं बहु
पुत्रत्वं तत्सर्व्वमीशप्रसादात्ब्राह्मणवचनात्त्वय्यास्तु

(मार्जन कर के फूल, अक्षत रानी के हाथ में देता है)

रानी : (हाथ जोड़कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है) महाराज गुरुजी से मेरी ओर से बिनती करके दंडवत कह दोजिएगा ।

ब्राह्मण : जो आज्ञा (आशीर्वाद देकर जाता है)

रानी : आज महाराज अब तक सभा में नहीं आए ?

सहेली : अब आते होंगे पूजा में कुछ देर लगी होगी ।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

(राग भैरव)

प्रगटहु रबिकुलरबि निसि बीती प्रजा कमलगन फूले ।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन भय तम उन भूले ।।

नसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो ।
मागध बंदी सूत चिरैयन मिलि कलरोर मचायो ।।

तुव कस सीतल पौन परसि चटकीं गुलाब की कलियाँ ।
अति सुख पाइ असीस देत सोई करि अंगुरिन चट अलियाँ ।।

भए धरम मैं थित अब द्विज जन प्रजा काज निज लागे ।
रिपु जुवती मुख कुमुद मन्द जन चक्रवाक अनुरागे ।।

अरध सरिस उपहार लिए नृप ठाढ़े तिन कहं तोखो ।
न्याव कृपा सों ऊंच नीच सम समुझि परसि कर पौखो ।।

(नेपथ्य में से बाजे की धुनि सुन पड़ती है)

रानी : महाराज ठाकुरजी के मंदिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बंदी लोग भी गाते आते हैं ।

सहेली : आप कहती हैं चले ? वह देखिये आ पहुँचे कि चले ।

रानी : (घबरा कर आदर के हेतु उठती हैं)

(परिकर[1] सहित महाराज हरिश्चन्द्र[2] आते हैं/रानी प्रणाम करती है और सब लोग यथा स्थान बैठते हैं)

हरिश्चन्द्र : (रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये ! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलीन क्यों हो रहा है ?

---

1. राजा के परिकर में प्रथम मंत्री नीला पैंजामा कमरबन्द दुशाला पगड़ी सिरपेंच सजे । दो मुसाहिब साधारण सभ्यों के भेष में । एक निशान वाला सेवक के भेष में । निशान पर सूर्य्य के नीचे "सत्ये नास्ति, भयंक्वचित्" लिखा हुआ । चार शस्त्रधारी अंगरक्षक दो सेवक ।
2. सफेद वा केसरी जामा पैंजामा कमरबन्द मर्दाना सब गहना सिर पर किरीट वा पगड़ी सिरपेंच तुर्रा हाथ में तलवार दुशाला वा कोई चमकता रुमाल ओढ़े ।

रानी : पिछली रात मैंने कुछ दु:स्वप्न देखे हैं जिनसे चित्त व्याकुल हो रहा है।

हरिश्चन्द्र : प्रिये ! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है पर तुम तो बीर कन्या, बीरपत्नी और बीरमाता हो; तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों ?



रानी : नाथ ! मोह से धीरज जाता रहता है।

हरिश्चन्द्र : सो गुरु जी से कुछ शान्ति करने को नहीं कहलाया।

रानी : महाराज ! शान्ति तो गुरू जी ने कर दी है।

हरिश्चन्द्र : तब क्या चिन्ता है शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रक्खो सब कल्याण होगा। सदा सर्वदा सहज मंगल साधन करते

भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के संतोष करना चाहिए ।

रानी : महाराज ! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने भी ग्रंथों में देखा है ?

हरिश्चन्द्र : (रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो कुछ हमने भी देखा है । (चिन्ता पूर्व्वक स्मरण करके) हां यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्या साधन करने को सब दिव्य महाबिद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जान कर उनको बचाने गया हूँ तो वह मुझी से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े बिनय से मैंने उसे मनाया है तो उसने मुझसे मेरा सारा राज्य मांगा है । मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया है । (इतना कहकर अत्यन्त व्याकुलता नाट्य करता है) ।

रानी : नाथ । आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गए ।

हरिश्चन्द्र : मैं यह सोचता हूँ कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहाँ पाऊं और बिना उसकी थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूँगा ।

रानी : नाथ । क्या स्वप्न के व्योहार को भी आप सत्य मानिएगा

हरिश्चन्द्र : प्रिये हरिश्चन्द्र की अर्द्धांगिनी होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है । हां ! भला तुम ऐसी बात मुँह से निकलती हो ! स्वप्न किसने देखा ? मैंने न ? फिर क्या स्वप्न संसार अपने काल में असत्य है इसका कौन प्रमाण है, और जो अब असत्य कहो तो मरने के पीछे तो यह संसार भी असत्य है फिर इस संसार में परलोक के हेतु लोग धर्म्माचरण क्यों करते हैं ? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष ।

रानी : (हाथ जोड़कर) नाथ क्षमा कीजिए, स्त्री की बुद्धि ही कितनी ।

हरिश्चन्द्र : (चिन्ता करके) पर मैं अब करूँ क्या ! अच्छा । प्रधान नगर में डौंडी पिटवा दो कि राज्य सब लोग के आज

अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण का समझे उसके अभाव में हरिश्चन्द्र उसके सेवक की भाँति उस की थाती समझ के राज का कार्य्य करेगा और दो मुहर राज-काज के हेतु बनवा लो एक पर 'अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण सेवक हरिश्चन्द्र' और दूसरे पर 'राजाधिराज अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण महाराज' खुदा रहे और आज से राज काज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे। देस देस के राजाओं और बड़े-बड़े कार्य्यधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र के स्वप्न में अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है इससे आज से उसका राज हरिश्चन्द्र मंत्री की भांति सम्हालेगा।

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल : महाराजाधिराज ! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है।

हरिश्चन्द्र : (घबड़ा कर) अभी सादर पूर्वक ले आओ।

द्वारपाल : जो आज्ञा (जाता है)।

हरिश्चन्द्र : यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात हो।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्र[1] आते हैं)

हरिश्चन्द्र : (आदर पूर्व्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज ! पधारिए यह आसन है।

विश्वामित्र : बैठे, बैठ चुके, बोल अभी तैंने मुझे पहिचना कि नहीं।

हरिश्चन्द्र : (घबड़ाकर) महाराज ! पूर्व्व परिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

विश्वामित्र : (क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम तू काहे को पहिचानेगा, सच है रे सूर्य्यकुलकलंक तू क्यों पहिचानेगा, धिक्कार तेरे मिथ्या धर्माभिमान को। ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट तू भूल गया कल पृथ्वी किस को दान दी थी, जानता नहीं कि मैं कौन हूँ ?

---

1. जटा और डाढ़ी बढ़ाए, खड़ाऊ पहिने, गले में मृगछाला बांधे, धोती पर बाघ की मोटी करधनी, एक हाथ में कुश और कमंडल।

'जातिस्वयंग्रहणादुर्ललितंकविप्रं
दृष्यद्वशिष्ठसुतकाननधूमकेतुम्
सर्गान्तराहरणभीतजगत्कृतान्तं
चण्डालयाजिनमवेषिनकौशिकमाम्'

हरिश्चन्द्र : (पैरों पर गिरके बड़े बिनय से) महाराज ! भला आप को त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानेगा ।

'अन्नक्षयादिषु तथाविहितात्मवृत्ति
राजप्रतिग्रह पराङ् मुखमानसं त्वाम्
आड़ोवकप्रधनकम्पितजीवलोकं
कस्तेजसां च तपसां च निर्धिवेत्ति ।।'

विश्वामित्र : (क्रोध से) सच है रे पापा पाखंड मिथ्यादान वीर ! तू क्यों न मुझे 'राज प्रतिग्रह पराङ्मुख' कहेगा क्योंकि तैंने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान न दी है, ठहर-ठहर देख इस झूठ का कैसा फल भोगता है, हा ! इसे देख कर क्रोध से जैसे मेरी दहिनी भुजा शाप देने को उठती है वैसे ही जाति स्मरण के संस्कार से बाइँ भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है, (अत्यन्त क्रोध से लम्बी सांस लेकर और बांह उठा कर) अरे ब्रह्मा ! सम्हाल अपनी सृष्टि को नहीं तो परम तेज पुन्ज दीर्घतपोवर्द्धित मेरे आज इस असह्य क्रोध से सारा संसार नाश हो जाएगा. अथवा संसार के नाश ही से क्या ? ब्रह्मा का तो गर्ब्ब उसी दिन मैंने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई, आज इस राजकुलांगार का अभिमान चूर्ण करूंगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत में दानी प्रसिद्ध हो रहा है ।

हरिश्चन्द्र : (पैरों पर गिर के) महाराज क्षमा कीजिए मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था, सारी पृथ्वी आप की मैं आप का भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुँह से निकालते हैं । (ईषत् क्रोध से) और आप बारम्बार मुझे झूठा न कहिए । सुनिए मेरी यह प्रतिज्ञा है ।

'चन्द टरै सूरज टरै टरै जगत ब्योहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को टरै न सत्य बिचार' ।।

विश्वामित्र : (क्रोध और अनादरपूर्व्वक हंस कर) ह ह ह ह ! सच है सच है रे मूढ़ ! क्यों नहीं, आखिर सूर्य्यवंशी है। तो दे हमारी पृथ्वी।

हरिश्चन्द्र : लीजिए, इसमें बिलम्ब क्या है, मैंने तो आप के आगमन के पूर्ब्ब ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है। (पृथ्वी की ओर देख कर)

जेहि पाली इक्ष्वाकु सीं अबलौं रवि कुल राज।
ताहि देत हरिचन्द नृप बिश्वामित्र हि आज।।

बसुधे ! तुम बसु सुख कियो मम पुरुखन की होय।
धरमबद्ध हरिचन्द को छमहु सु परबस जोय।।

विश्वामित्र : (आप ही आप) अच्छा ! अभी अभिमान दिखा ले, तो मेरा नाम विश्वामित्र जो तुझको सत्यभ्रष्ट कर के छोड़ा, और लक्ष्मी से तो भ्रष्ट हो ही चुका है। (प्रकट) स्वस्ति। अब इस महादान की दक्षिणा कहाँ है ?

हरिश्चन्द्र : महाराज ! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

विश्वामित्र : भला सहस्र स्वर्ण मुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी।

हरिश्चन्द्र : जो आज्ञा (मंत्री से) मंत्री हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ।

विश्वामित्र : (क्रोध से) 'मंत्री हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ' मंत्री कहाँ से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है कि तैं मंत्री पर हुकुम चलता है ? झूठा कहीं का, देना ही नहीं था तो मुँह से कहा क्यों ? चल मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा।

हरिश्चन्द्र : (हाथ जोड़कर बिनय से) महाराज ठीक है। खजाना अब सब आप का है, मैं भूला क्षमा कीजिए। क्या हुआ खजाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है।

विश्वामित्र : एक महीने में तो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदंड गिराऊँगा, देख केवल एक मास की अवधि है।

हरिश्चन्द्र : महाराज ! मैं ब्रह्मदंड से उतना ही डरता जितना सत्यदं
से इससे

बेचि देह दारा सुग्रन होइ दास हू मन्द।
रखि है निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द ।।

(आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती)

।। इति दूसरा अंक ।।

तृतीय अंक

तीसरे अंक में अंकावतार

[स्थान–वाराणसी का बाहरी प्रान्त तालाब]



(पाप[1] आता है)

पाप : (इधर उधर दौड़ता और हांफता हुआ) मरे रे मरे, जले

1. काजल सा रंग, लाल नेत्र, महा कुरूप, हाथ में नंगी तलवार लिए, नीला काछ कछे।

रे जले, कहाँ जायँ, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुण्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते। सुना है कि राजा हरिश्चन्द्र काशी गए हैं क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वो तो हमको तुमने दान दे दी है, इससे पृथ्वो में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेचकर हमसे उरिन नहीं हो सकते। यह बात जब हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत ही घबड़ाए और सोच विचार कर कहा कि बहुत अच्छा महाराज हम काशी में अपना शरीर बेचेंगे क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है। यह सुनकर हम भी दौड़े कि चलो हम भी काशी चलें, क्योंकि जहाँ हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहाँ हमारे प्राण बचेंगे, सो यहाँ और भी उत्पात हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ स्नान, पूजा, जप, पाठ, दान, धर्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानो जड़ ही खोद डालेंगे। रात-दिन शंख घंटा की घनघोर के साथ वेद की धुनि मानो ललकार के हमारे शत्रु 'धर्म्म' की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यों न तपा हो भगवती भागीरथी के जलकण मिले वायु से उसका हृदय एक साथ शीतल हो जाता है। इसके उपरान्त शि शि शि·······ध्वनि अलग मारे डालती है। हाय कहाँ जायँ क्या करें। हमारी तो संसार से मानो जड़ ही कट जाती है, भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है पर यहाँ तो मानो हमारा राज ही नहीं, कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो यहाँ आया कि गति हुई।

(नेपथ्य में)

सच है—

येषां क्वापि गतिर्नास्ति/तेषांवाराणसी गतिः

पाप : अरे! यह कौन महा भयंकर भेस, अंग में भभूत पोते; एड़ी तक जटा लटकाए, लाल लाल आँख निकाले साक्षात् काल की भाँति तृशूल घुमता हुआ चला आता है। प्राण!

तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल से, अब इस समय भूमण्डल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है ।

(भागता हुआ जाता है/भैरव[1] आते हैं)

भैरव : सच है । येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः । देखो इतना बड़ा पुण्यशील राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी आत्मा और स्त्री पुत्र बेचने को यहीं आया है । अहा ! धन्य है सत्य । आज जब भगवान् भूतनाथ राजा हरिश्चन्द्र का वृत्तांत भवानी से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गए और रोमांच होने से सब शरीर के भस्मकरण अलग-अलग हो गए । मुझको आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्व्वदा राजा हरिश्चन्द्र की अंगरक्षा करना । इससे चलूँ मैं भी भेस बदल कर भगवान की आज्ञा पालन में प्रवर्त्त हूँ ।

(जाते हैं)

तीसरे अंक में यह अंकावतार समाप्त हुआ

---

1. महादेव जी का सा सिंगार, तीन नेत्र, नीला रंग एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में प्याला ।

(किनारे की सड़क पर महाराज हरिश्चन्द्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं)

हरिश्चन्द्र : देखो काशी भी पहुँच गए। अहा ! धन्य है काशी। भगवति बाराणसि तुम्हें अनेक प्रणाम हैं। अहा ! काशी की कैसी अनुपम शोभा है।

'चारहु आश्रम बर्न बसैं मनि कंचन धाम अकास बिभासिका।
सोभा नहीं कहि जाई कछू बिधि नै रची मानो पुरोन की की नासिका ।।
आपु बसैं गिरि धारनजू तट देवनदी बर बारि बिलासिका।
पून्यप्रकासिका पापबिनासिका हीयहुलासिका सोहत कासिका' ।।1।।

'बसैं बिदुमाधव बिसेसरादि देव सबै दरसन ही तें लागे जब मुख मसी है।
तीरथ अनादि पंचगंगा मनिकर्निकादि सात आवरन मध्य पुन्य रूप धंसी हैं ।।
गिरिधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी बार तोरै आसु कर्म्म रूप रसी हैं।
ससी सम जसी असी बरना में बसी पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी बनारसी है' ।।2।।

'रचित प्रभासी भासी अवलि मकानन की जिनमें अकासी फबै रतन नकासी है।
फिरैं दास दासी बिप्रगृही औ सन्यासी लसै बर गुनरासी देवपुरी हूँ न जासी है ।।
गिरिधारधास बिश्वकीरति बिलासी रमा हासी लौं उजासी जाकी जगत हुलासी है।
खासी परकासी पुनवांसी चंद्रिका सी जाके वासी अबिनासी अघनासी ऐसी कासी है' ।।3।।

देखो । जैसा ईश्वर ने यह सुन्दर अंगूठी के नगीने-सा नगर बसाया है वैसी ही नदी भी इसके लिए दी है । धन्य गंगे !

'जम की सब त्रास बिनास करी मुख तें निज नाम उचारन में ।

सब पाप प्रतापहि दूर दर्‌यौ तुम आपन आप निहारन में ।।

अहो गंग अनंग के शत्रु करे बहु नेकु जलै मुख डारन में ।

गिरिधारनजू कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारन में' ।।4।।[1]

कुछ महात्म ही पर नहीं, गंगा जी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है । आहा !

नव उज्जल जलधार हार हीरक-सी सोहति ।
विच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता मनि पोहति ।।

लोल लहर पवन एक पै इक इमि आवत ।
जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत ।।

सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत ।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ।।

श्री हरिपदनख चन्द्रकान्त मनि द्रवित सुधारस ।
ब्रह्म कमंडल मंडन भव खंडन सुर सुरबस ।।

शिव सिर मालति माल भगीरथ नृपति पुन्य फल ।
ऐरावत गज गिरि पति हिम नग कंठहार कल ।।

सगर सुअन सठ सहस परस जल मात्र उधारन ।
अगिनित धारारूप धारि सगर संचारन ।।

कासी कहं प्रिय जानि ललकि भेट्‌यौ जब धाई ।
सपनेहूं नहि तजी रही अंकन लपटाई ।।

कहूँ बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
कहुं छतरी कहुं मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत ।।

1. यह चारों कवित ग्रंथकर्ता के पिता श्री-बाबू गोपालचन्द्र के बनाए हैं जो कविता में अपना नाम गिरिधरदास रखते थे ।

धवल धाम चहुध ओर फहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौसा करि साका ।।

मधुरी नौबत बजत कहूं नारी नर गावत।
बेद पढ़त कहुं द्विज कहुं जोगी ध्यान लगावत ।।

कहुँ सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उछारत।
जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ।।

धोअत सुंदरि बदन करन अति ही छवि पावत।
बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत ।।

सुंदरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसमन मन मोहत ।।

दीठि नहीं जह जात रहत तितही ठहराई।
गंगा छबि हरिचन्द्र कछू बरनी नहीं जाई ।।

(कुछ सोचकर) पर हां! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जान पड़ता है।

असनं वसनं वासो येषां चैवाविधानतः।
मगधेनसमाकाशी गंगाप्यंगारवाहिनी ।।[1]

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिये दुखी होता है। हा! कैसे कष्ट की बात है राजपाट धनधाम सब छूटा, अब दक्षिणा कहाँ से देंगे! क्या करें! हम सत्य धर्म कभी छोड़ेंगे ही नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे, और जो वह शाप न भी देंगे तो क्या? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग कर सकते। क्या करें? कुबेर को जीत कर धन लावें? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है। तो क्या किसी से माँग कर दें? पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे। फिर ऋण काढ़ें? पर देंगे कहां से। हा! देखो काशी में आकर लोग

---

1. जिन का भोजन, वस्त्र और निवास ठीक नहीं है उनको काशी भी मगह है और गंगा भी तपाने वाली है।

संसार के बंधन से छूटते हैं पर हमको यहां भी हाय-हाय मची है। हा! पृथ्वी! तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं अपना कलंकित मुंह फिर किसी को न दिखाऊं। (आंतक से) पर यह क्या? सूर्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे यह कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिए बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें। (कुछ सोच कर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती। क्या करें? हमें तो संसार सूना देख पड़ता है। (चिन्ता करके। एक साथ हर्ष से) वाह अभी तो स्त्री पुत्र और हम तीन-तीन मनुष्य तैयार हैं, क्या हम लोगों के बिकने से सहस्र स्वर्ण मुद्रा भी न मिलेंगी। तब फिर किस बात का इतना शोच? न जानें बुद्धि इतनी देर तक कहां सोई थी। हमने तो पहले ही विश्वामित्र से कहा था:

वेचि देह दारा सुअन होय दास हूं मंद।
रखि हैं निज बच सत्य करि अभिमानी हरिश्चन्द ।।

(नेपथ्य में)

तो क्यों नहीं जल्दी अपने को बेचता? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे-पीछे दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें?

हरिश्चन्द : अरे मुनि तो आ पहुंचे। क्या हुआ आज उनसे एक दो दिन की अवधि और लेंगे।

(विश्वामित्र आते हैं)

विश्वामित्र : (आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी इसी दुष्ट के कारण फिर बहक गई कछ् इन्द्र के कहने ही पर, नहीं हमारा इस पर स्वतः भी क्रोध है पर क्या करें इसके सत्य, धैर्य और विनय से राज्यभ्रट हो चुका पर जब तक इसे सत्यभ्रष्ट न कर लूंगा तब तक मेरा संतोष न होगा। (आगे देखकर) अरे यही दुरात्मा (कुछ रुक कर) वा महात्मा हरिश्चन्द्र है। (प्रगट) क्यों रे आज महीने में कै दिन बाकी हैं। बोल कब दक्षिणा देगा?

हरिचन्द : (घबड़ाकर) अहा ! महात्मा कौशिक । भगवान् प्रणाम करता हूं ।

(दंडवत करता है)



विश्वामित्र : हुई प्रणाम, बोल तैंने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया ? आज महिना पूरा हुआ, अब मैं एक क्षण भर भी न मानूंगा । दे अभी नहीं तो—(शाप के वास्ते कमंडल से जल हाथ में लेते हैं) ।

हरिश्चन्द : (पैरों में गिरकर) भगवन् क्षमा कीजिए; क्षमा कीजिए। यदि आज सूर्यास्त के पहिले न दूं तो जो चाहे कीजिएगा। मैं अभी अपने को बेचकर मुद्रा ले आता हूँ।

विश्वामित्र : (आप ही आप) वाह रे महानुभावता! (प्रगट) अच्छा आज सांझ तक और सही। सांझ को न देगा तो मैं शाप ही न दूंगा वरंच त्रैलोक्य में आज ही विदित कर दूंगा कि हरिश्चन्द्र सत्य भ्रष्ट हुआ। (जाते हैं)

हरिश्चन्द्र : भला किसी तरह मुनि से प्राण बचे। अब चलें अपना शरीर बेचकर दक्षिणा देने का उपाय सोचें। हा! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल आंखें नहीं देखी हैं (आगे चलकर) अरे क्या बाजार में आ गए, अच्छा, (सिर पर तृण रखकर)[1] अरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दुकानदार, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं किसी को लेना हो तो लो। (इसी तरह कहता हुआ इधर-उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्य-विक्रय को अनुचित जानकर हम दूसरों को दंड देते थे पर आज वही कर्म हम आप करते हैं। दैव बली है। ('अरे सुनो भाई' इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है। ऊपर देखकर) क्या कहा? "क्यों तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो?" आर्य यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा? 'तुम क्या-क्या कर सकते हो; क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे?' इस का क्या पूछना है स्वामी जो कहेगा वही करेंगे; समझते सब कुछ हैं पर इस अवसर पर कुछ समझना काम नहीं आता; और जैसे स्वामी रक्खेगा वैसे रहेंगे। जब अपने को बेच ही दिया तब इसका क्या विचार है। (ऊपर देखकर) क्या कहा? 'कुछ दाम

---

1. उस काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तो सिर पर तृण रखता था।

करो ।' आर्य हम लोग तो क्षत्रिय हैं, हम दो बात कहां से जानें । जो कुछ ठीक था कह दिया ।

(नेपथ्य में से)

आर्यपुत्र ! ऐसे समय में हम को छोड़े जाते हो । तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रहके क्या करूँगी । स्त्री को अर्द्धांगिनी कहते हैं, इससे पहिले बायां अंग बेच लो तब दाहिना अंग बेचो ।

हरिश्चन्द : (सुनकर बड़े शोक से) हा ! रानी की यह दशा इन आँखों से कैसे देखी जाएगी ।

(सड़क पर रानी और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)

शैव्या : कोई महात्मा कृपा करके हमें मोल ले तो बड़ा उपकार हो।

बालक : अम को बी कोई मोल ले लो तो बला उपकाल ओ ।

शैव्या : (आँखों में आंसू भरकर) पुत्र ! चन्द्रकुल भूषण महाराज वीरसेन का नाती और सूर्यकुल की शोभा महाराजा हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू क्यों ऐसे कातर बचन कहता है । मैं अभी जीती हूं (रोती है)

बालक : (मां का अंचल पकड़ के) मां ! तुमको कोई मोल लेगा तो अम को बी मोल लेगा । आं आं मा लोती काए को औ । (कुछ रोना-सा मुंह बना के शैव्या का आंचल पकड़ के झूलने लगता है) ।

शैव्या : (आँसू पोंछकर) पुत्र ! मेरे भाग्य से पूछ ।

हरिश्चन्द्र : अहह ! भाग्य ! यह भी तुम्हें देखना था । हा ! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई हम उनको कुछ धीरज भी न दे आए । उनकी अब कौन गति होगी । हा ! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो, अब यह देखना पड़ा। हृदय तुम इस चक्रवती की सेवा योग्य बालक हो और स्त्री को बिकता देखकर टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ? (बारम्बार लम्बी सांसें लेकर आसू बहाता है)

शैव्या : ('कोई महात्मा' इत्यादि कहती हुई ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'क्या क्या करोगी ?' पर पुरुष से सम्भाषरण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और सब सेवा करूंगी। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'पर इतने मोल पर कौन लेगा ?' आर्य कोई साधु-ब्राह्मरण, महात्मा कृपा करके ले ही लेंगे।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)

उपाध्याय : क्यों रे कौंडिन्य ! सच ही दासी बिकती है ?

बटुक : हाँ गुरुजी क्या मैं झूठ कहूंगा। आप ही देख लीजिएगा।

उपाध्याय : तो चल, आगे-आगे भीड़ हटाता चल। देख धाराप्रवाह की भांति कैसे सब कामकाजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं। भीड़ के मारे पैर धरने को जगह नहीं है, और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता।

बटुक : (आगे-आगे चलता हुआ) हटो भाई हटो। (कुछ आगे बढ़कर) गुरुजी यह जहां भीड़ लगो है वहीं होगी।

उपाध्याय : (शैव्या को देखकर) अरे यही दासी बिकती है ?

शैव्या : ('अरे कोई हम को मोल ले' इत्यादि कहती और रोती है)

बालक : (माता की भांति तोतली बोली से कहता है)।

उपाध्यायय : पुत्री ! कहो तुम कौन-कौन सेवा करोगी ?

शैव्या : पर पुरुष से सम्भाषरण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और जो-जो कहिएगा सब सेवा करूंगी।

उपाध्याय : वाह ! ठीक है। अच्छा लो यह सुबर्ण। हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र के अग्नि की सेवा के घर के काम-काज नहीं कर सकती, सो तुम सम्हालना।

शैव्या : (हाथ फंलाकर) महाराज आपने बड़ा उपकार किया।

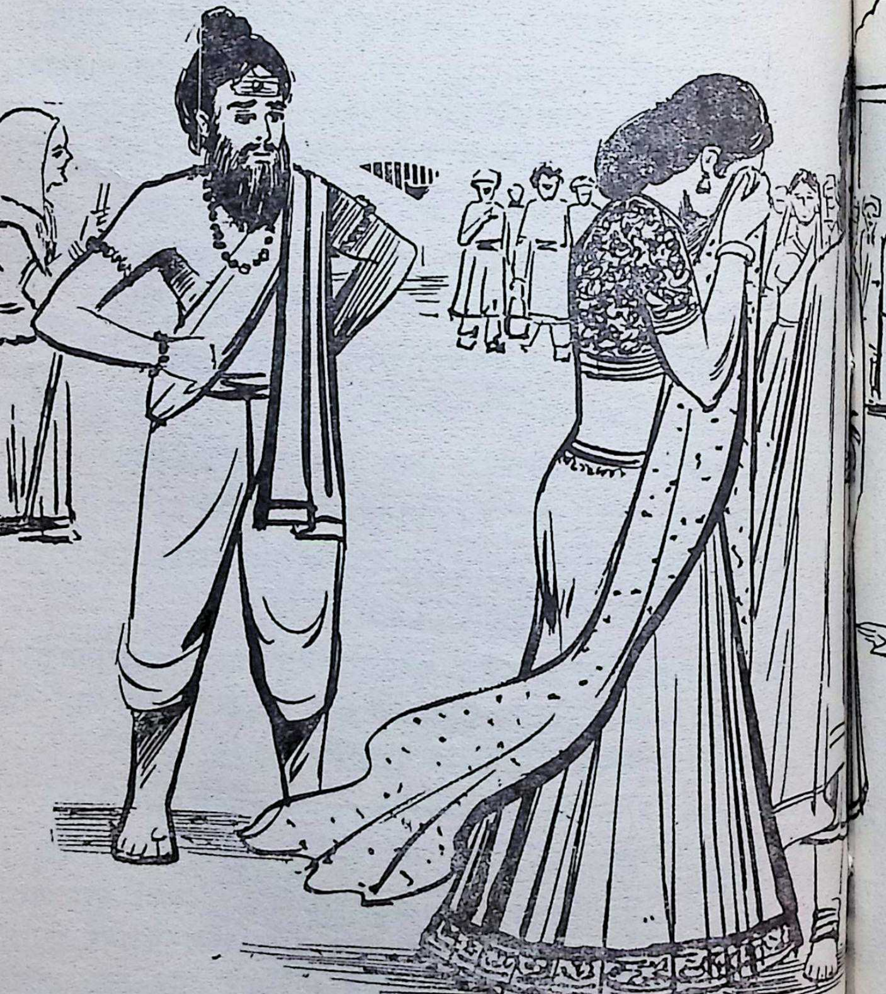
उपाध्याय : शैव्या को भली भांति देखकर (आप ही आप) अहा ! यह निस्संदेह किसी बड़े कुल की है। इसका मुख सहज लज्जा से ऊंचा नहीं होता, और दृष्टि बराबर पैर ही पर है। जो बोलती है वह धीरे-धीरे और बहुत सम्हाल

के बोलती है। हा ! इसकी यह गति क्यों हुई ! (प्रकट) पुत्री तुम्हारे पति हैं न ?

शैव्या : (राजा की ओर देखती है)

हरिश्चन्द्र : (आप ही आप दुःख से) अब नहीं। पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो।

उपाध्याय : (राजा को देखकर आश्चर्य से) अरे यह विशाल नेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल, और संसार की रक्षा करने के योग्य



लंबी-लंबी भुजावाला कौन मनुष्य है, और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रखा है ? (प्रगट) महात्मा तुम हम को अपने दुख का भागी समझो और कृपा पूर्व्वक अपना सब वृत्तान्त कहो ।

हरिश्चन्द्र : भगवान् ! और तो बिदित करने का अवसर नहीं है इतना ही कह सकता हूं कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई ।



उपाध्याय : तो हम से धन लेकर आप शीघ्र ही ऋणमुक्त हूजिए।

हरिश्चन्द्र : (दोनों कानों पर हाथ रखकर) राम राम ! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है। आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी ?

उपाध्याय : तो पांच हजार पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले।

शैव्या : (राजा से हाथ जोड़कर) नाथ हमारे आछत आप मत बिकिए, जिसमें हम को अपनी आँख से यह न देखना पड़े, हमारी बिनती मानिए। (रोती है)।

हरिश्चन्द्र : (आंसू रोककर) अच्छा ! तुम्हीं जाओ। (आप ही आप) हा ! यह वज्र हरिश्चन्द्र ही का है कि अब विदीर्ण भी नहीं होता।

शैव्या : (राजा के कपड़े में सोना बांधती हुई) नाथ ! अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे। (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य, आप क्षण भर क्षमा करें तो मैं आर्य पुत्र का भली-भांति दर्शन कर लूं। फिर यह मुख कहां और मैं कहां।

उपाध्याय : हां हां मैं जाता हूं। कौडिन्य यहां है तुम उसके साथ आना। (जाता है)

शैव्या : (रोकर) नाथ मेरे अपराधों को क्षमा करना।

हरिश्चन्द्र : (अत्यन्त घबड़ाकर) अरे विधाता तुझे यही करना था। (आप ही आप) हा ! पहिले महारानी बनाकर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बदा था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान् सूर्य का भी मुख मलिन हो रहा है। (रोता हुआ प्रकट रानी से) प्रिये सर्वभाव से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करना।

शैव्या : (रोकर) नाथ ! जो आज्ञा।

बटुक : उपाध्याय जी गए, अब चलो जल्दी करो।

हरिश्चन्द्र : (ग्राँखों में ग्राँसू भर के) देबी (फिर रुक कर ग्रत्यंत सोच से ग्राप ही ग्राप) हाय ! ग्रब मैं देबी क्या कहता हूं, ग्रब बिधाता ने इसे दासी बनाया। (धैर्य से) देबी ! उपाध्याय की ग्राराधना भली भांति करना ग्रौर इनके सब शिष्यों से भी सुहृत भाव रखना, ब्राह्मरण की स्त्री की प्रीति पूर्व्वक सेवा करना, बालक का यथासंभव पालन करना, ग्रौर ग्रपने धर्म ग्रौर प्राण की रक्षा करना। विशेष हम क्या समझावें, जो जो दैव दिखावे उसे धीरज से देखना। (ग्रांसू बहते हैं)

शैव्या : जो ग्राज्ञा (राजा के पैरों पर गिर के रोती है)।

हरिश्चन्द्र : (धैर्य पूर्व्वक) प्रिये ! देर मत करो बटुक घबड़ा रहे हैं।

शैव्या : (उठकर रोती ग्रौर राजा की ग्रोर देखती हुई धीरे-धीरे चलती है)

बालक : (राजा से) पिता मां कग्रां जाती एं।

हरिश्चन्द्र : (धैर्य से ग्रांसू रोककर) जहां हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बालक : (बटुक से) ग्रले मां को मत लेजा। (माँ का ग्राँचल पकड़ के खींचता है)

बटुक : (बालक को ढकेल कर) चल-चल, देर होती है।

बालक : (ढकेलने से गिरकर रोता हुग्रा उठकर ग्रत्यंत क्रोध ग्रौर करुणा से माता पिता की ग्रोर देखता है)

हरिश्चन्द्र : ब्राह्मरण देवता ! बालकों के ग्रपराध से नहीं रुष्ट् होना। (बालक को उठाकर धूर पोंछ के मुंह चूमता हुग्रा) पुत्र मुझ चांडाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मरण को क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए। जाग्रो माता के संग, मुझ भाग्यहीन के साथ रह कर क्या करोगे। (रानी से) प्रिये धैर्य करो। ग्रपना कुल ग्रौर जाति स्मरण करो। ग्रब जाग्रो देर होती है।

(रानी ग्रौर बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं)

हरिश्चन्द्र : धन्य हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे सिवाय और ऐसा कठोर हृदय किस का होगा। संसार में धन और जन छोड़कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं पर तुमने उसका भी त्याग किया।

(विश्वामित्र आते हैं)

हरिश्चन्द्र : (पैर पर गिर के प्रणाम करता है)

विश्वामित्र : ला दे दक्षिणा। अब सांझ होने में कुछ देर नहीं है।

हरिश्चन्द्र : (हाथ जोड़कर) महाराज आधी लीजिए आधी अभी देता हूँ। (सोना देता है)

विश्वामित्र : हम आधी दक्षिणा लेके क्या करें ! दे चाहे जहाँ से सब दक्षिणा।

(नेपथ्य में)

धिक् तपो धिक् व्रतमिदं धिक् ज्ञानंधिक् बहुश्रुतम्।
नीतवान सियब्रह्मन् दशां।

विश्वामित्र : (बड़े क्रोध से) आ ! हमको धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है ? (ऊपर देखकर) अरे विश्वेदेवा (क्रोध से जल हाथ में लेकर) अरे क्षत्रिय के पक्षपतियों ! तुम अभी विमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहाँ भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ से मारे जाओ। (जल छोड़ते हैं)

(नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है)

(सुन कर ऊपर देखकर आनंद से) ह ह ह ह ! अच्छा हुआ ! यह देखो किरीट कुडंल बिना मेरे क्रोध से विमान से छूट कर विश्वेदेवा उलटे हो-हो कर नीचे गिरते हैं। और हमको धिक्कार दें।

हरिश्चन्द्र : (ऊपर देखकर भय से) वाह रे तप का प्रभाव। (आप ही आप) तब तो हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया है यही बड़ा अनुग्रह है। (प्रकट) भगवान यह स्त्री बेच कर आधा धन पाया है सो लें और आधा हम अपने को बेचकर अभी देते हैं। (नेपथ्य में) अरे अब तो नहीं सही जाती।

विश्वामित्र : हम आधा न लेंगे चाहे जहाँ से अभी सब दे।

हरिश्चन्द्र : (अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है)

(चांडाल के भेष में धर्म और सत्य आते हैं[1])



[2]धर्म : (आप ही आप)
हम प्रत्तच्छ हरिरूप जगत हमरे बल चालत।
जल थल नभ थिर मो प्रभाव मरजाद न टालत।।

1. यही पांचों विश्वेदेवा विश्वामित्र के शाप से द्वापर में द्रोपदी के पांच पुत्र हुए थे, जिन्हें अश्वत्थामा ने बालकपन ही में मार डाला।
2. काछ कछे, काला रंग, लाल नेत्र, सिर भर छोटे छोटे घुंघराले बाल और शरीर नंगा, बातों से मतवालापन झलकता हुआ।

हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी।
इक हमहीं संग जात तजत सब पितु सुत नारी।।
सो हम नित थित इक सत्य मैं जाके बल सब जियो।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो।।

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है। (आगे बढ़कर प्रत्यक्ष) अरे हरजनवाँ ! मोहर का संदूख ले आवा है न ?

सत्य : क चौधरी मोहर ले के का करबो ?

धर्म : तोंहसे का काम पूछै से ?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

हरिश्चन्द्र : (अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि दो तीन बेर पुकार के इधर-उधर घूमकर) हाय ! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु भगवान सूर्य भी आज हमसे रुष्ट हो कर शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं (घबराहट दिखाता है)।

धर्म : (आप ही आप) हाय हाय ! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है। तो अब चलें आगे। (आगे बढ़कर) अरे अरे हम तुम को मोल लेंगे। लेव यह पचास सै मोहर लेव।

हरिश्चन्द्र : (आनन्द से आगे बढ़कर) वाह कृपानिधान ! बड़े अवसर पर आए। लाइये। (उसको पहिचान कर) आप मोल लोगे ?

धर्म : हां हम मोल लेंगे। (सोना देना चाहता है)।

हरिश्चन्द्र : आप कौन हैं ?

धर्म : हम चौधरी डोम सरदार।
अमल हमारा दोनों पार।।
सब मसान पर हमारा राज।
कफन मांगने का है काज।।

फूलमती देबी[1] के दास।
पूजैं सती मसान निवास ।।
धनतेरस श्रौ रात दिवाली।
बल चढ़ाय कै पूजैं काली ।।
सो हम तुमको लेंगे मोल।
देंगे मुहर गांठ से खोल ।।

(मत्त की भाँति चेष्टा करता है)

हरिश्चन्द्र : (बड़े दुःख से) श्रहह ! बड़ा दारुण व्यसन उपस्थित हुश्रा है। (विश्वामित्र से) भगवान् मैं पेर पड़ता हूँ, मैं जन्म भर श्राप का दास होकर रहूँगा, मुझे चांडाल होने से बचाइए ।।

विश्वामित्र : छिः मूर्ख ! भला हम दास लेके क्या करेंगे।

'स्वयंदासास्तपस्विनः'

हरिश्चन्द्र : (हाथ जोड़कर) जो श्राज्ञा कीजियेगा हम सब करेंगे।

विश्वामित्र : सब करेगा न ? (ऊपर हाथ उठाकर) कर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो श्राप कहेंगे मैं सब करूँगा।

हरिश्चन्द्र : हां हां जो श्राप श्राज्ञा कीजिएगा सब करूँगा।

विश्वामित्र : तो इसी गाहक के साथ श्रपने को बेचकर श्रभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे।

हरिश्चन्द्र : जो श्राज्ञा। (श्राप ही श्राप) श्रब कौन सोच है। (प्रकट धर्म से) तो हम एक नियम पर बिकेंगे।

धर्म : वह कौन ?

हरिश्चन्द्र : भीख श्रसन कम्मल बसन रखिहैं दूर निवास।
जो प्रभु श्राज्ञा होई है करि हैं सब ह्वै दास ।।

धर्म : ठीक है लेव सोना (देर से राजा के श्रांचल में मोहर देता है)

---

1. प्राचीन काल में चाण्डालों की कुल देवी चंडकात्यायनी थी परन्तु इस काल में फूलवती इन लोगों की कुलदेवी हैं।

हरिश्चन्द्र : लेकर हर्ष से (आप ही आप) ऋण छूट्यो पूर्‌यो बचन द्विजहु न दीनो शाप। सत्य पालि चंडालहू होई आजु मोहि दास ।।

(प्रकट विश्वामित्र से) भगवन्! लीजिए यह मोहर।

विश्वामित्र : (मुँह चिढ़ाकर) सचमुच देता है ?

हरिश्चन्द्र : हां हां यह लीजिए। (मोहर देते हैं)

विश्वामित्र : (लेकर) स्वस्ति। (आप ही आप) बस चलो बहुत परीक्षा हो चुकी। (जाना चाहते हैं)

हरिश्चन्द्र : (हाथ जोड़कर) भगवन् दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न ?

विश्वामित्र : हां क्षमा हुआ। अब हम जाते हैं।

हरिश्चन्द्र : भगवन् प्रणाम करता हूँ।

(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते है)

हरिश्चन्द्र : अब चौधरी जी (लज्जा से रुककर) स्वामी की जो आज्ञा हो वह करें।

धर्म : (मत्त की भांति नाचता हुआ)

जाओ अभी दक्खिनी समान।
लेओ वहां कफ्फन का दान ।।

जो कर तुमको नहीं चुकावै।
सो किरिया करने नहीं पावै ।।

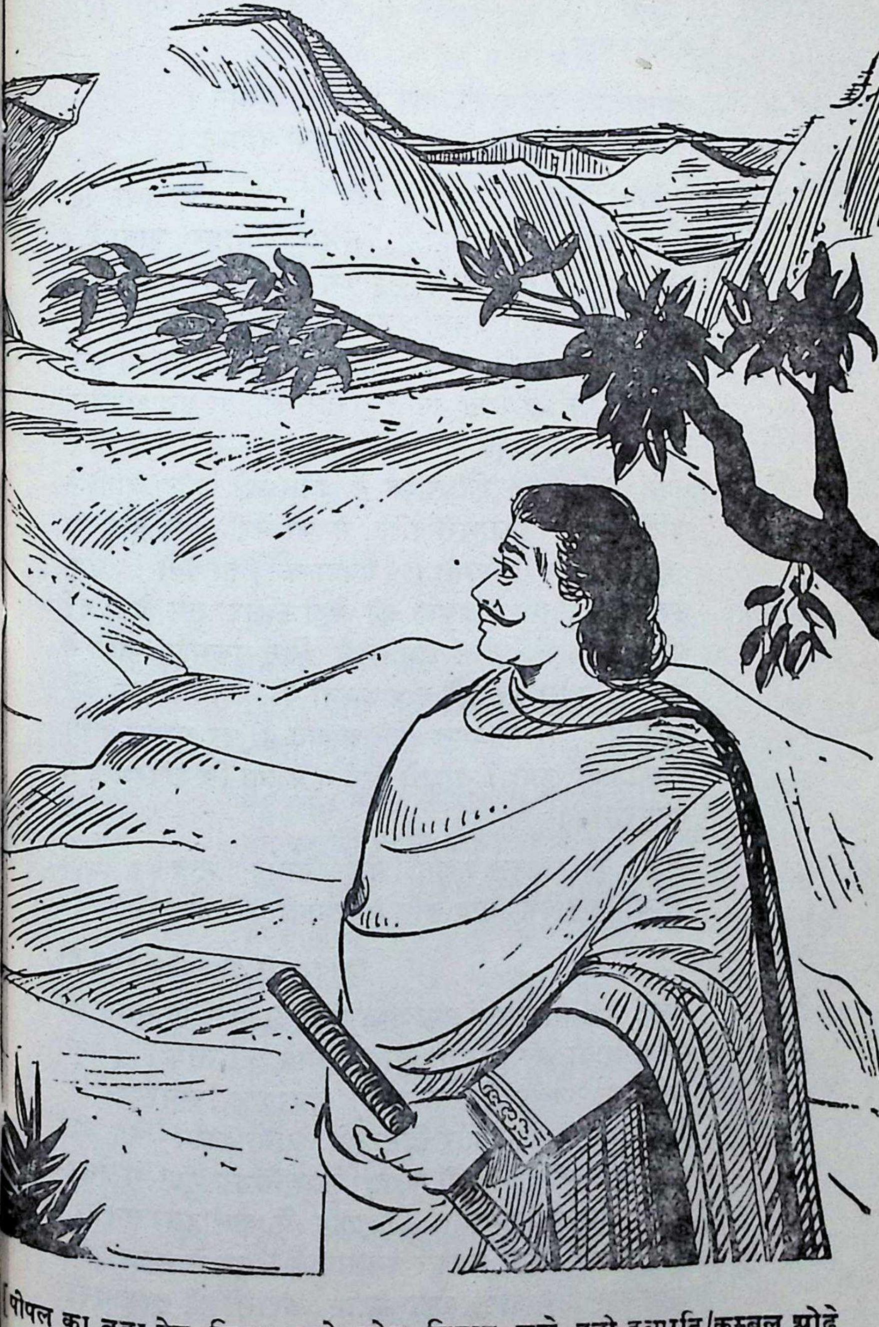
चलो घाट पर करो निवास।
भए आज से मेरे दास ।।

हरिश्चन्द्र : जो आज्ञा।

[सत्य हरिश्चन्द्र का तीसरा अंक समाप्त हुआ]

चतुर्थ अंक

चौथा अंक] [स्थान : दक्षिण स्मशान



[पीपल का बड़ा पेड़, चिता, मुरदे, कोए, सियार, कुत्ते, हड्डो इत्यादि/कम्बल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिए हुए राजा हरिश्चन्द्र फिरते दिखाई पड़ते हैं]

हरिश्चन्द्र : (लम्बी सांस लेकर) हाय ! अब जन्म भर यही दुःख भोगना पड़ेगा ।

जाति दास चंडाल की, घर घनघोर मसान ।
कफन खसोटी को करम सबहो एक समान ।

न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शांत हुआ कि नहीं । बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है । दक्षिणा का ऋण चुका तो यह कर्म करना पड़ा । हम क्या-क्या सोचें । अपनी अनाथ प्रजा को, या दीन नातेदारों को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान वालक को, या अपने ही चंडालपने को । हा ! बटुक के धक्के से गिरकर रोहिताश्व ने क्रोधभरी और रानी ने जाती समय करुणाभरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलती । (घबड़ा कर) हा देवी ! सूर्य-कुल की बहू और चंद्रकुल की बेटी होकर तुम बेची गई और दासी बनी । हा ! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गुंथ सकती थीं उनसे बरतन कैसे माजोगी ! (मोह प्राप्त होने चाहता है पर सम्हल कर) अथवा क्या हुआ ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा ।

बेचि देह दारा सुअन होई दासहू मन्द ।
राख्यौ निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द ।।

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे ! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी ? कोई पुन्यात्मा का मुरदा आया होगा । तो हम सावधान हो जायं । (लट्ठ कंधे पर रखकर फिरता हुआ) खबरदार ! खबरदार !! बिना हम से कहे और बिना हमें आधा कफन दिए कोई संस्कार न करे । (यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर-उधर देखता फिरता है) (नेपथ्य में कोलाहल सुनकर) हाय हाय ! कैसा भयंकर स्मशान है ! दूर से मंडल बांध-बांध कर चोंच बाए, डैना फैलाए, कंगालों की तरह मुरदों

पर गिद्ध कैसे गिरते हैं, और कैसा मांस नोंच-नोंच कर आपस में लड़ते हैं, और चिल्लाते हैं। इधर अत्यन्त कर्णकटु अमंगल के नगाड़े की भांति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं। उधर चिर्राइन फैलाती हुई चट-चट करती चिता कैसी जल रही है, जिन में कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू वा चरबी बहती है। आग का रंग मांस के संबंध से नीला-पीला हो रहा है। ज्वाला घूम-घूम कर निकलती है। आग कभी एक साथ धधक उठती है कभी मन्द हो जाती है। धुआँ चारों ओर जा रहा है। (आगे देखकर आदर से) अहा! यह वीभत्स व्यापार भी बड़ाई के योग्य है। शव! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो। अतएव कहा है।

'मरनो भलो बिदेश को जहां न अपनो कोय।
माटी खायं जनावरा महा महोच्छव होय॥'

अहा! देखो

सिर पर बैठ्यौ काग आंख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनन्द उर धारत॥
गिद्ध जांघ कहं खोदि खोदि कै मांस उचारत।
स्वान आँगुरिन काटि काटि कै खान बिचारत॥
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद बढ़्यौ सबको हियौ।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहँ दियो॥
सोई मुख सोई उदर सोई कर पद दोय।
भयो आजु कछु और ही परसत जेहि नहिं कोइ॥
हाड़ मांस लाला रकत बसा तुचा सब सोय।
छिन्न-भिन्न दुरगन्धमय मरे मनुस के होय॥
कादर जेहि लखि कै डरत पंडित पावत लाज।
अहो! व्यर्थ संसार को विषय वासना साज॥

अहा! शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है।

(हा! मरना भी क्या वस्तु है।)

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यौ।
सोई अंग जेहि प्रिय करि जान्यौ ।।
सोई भुज जे पिय गर डारें।
सोई भुज जिन रन बिक्रम पारे ।।
सोई पद जिहि सेवक बन्दत।
सोई छबि जेहि देखि आनन्दत ।।
सोई रसना जहं अमृत बानी।
सोई सुनी कै हिय नारि जुड़ानी ।।
सोई हृदय जहां जहर ओका।
सोई सिर जहं निज बच टेका ।।
सोई छबिमय अंग सुवाए।
आजु जीव बिनु धरनि सुहाए ।।
कहां गई वह सुन्दर सोभा।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा ।।
प्रानहुं ते बढ़ि जा कहं चाहत।
ता कहं आजु सबै मिलि दाहत ।।

फूल बोझ हुं जिन न सहारे।
तिन पैं बोझ काठ बहु डारे ।।
सिर पीड़ा जिन की नहिं हेरी।
करत कपाल क्रिया तिनकेरी ।।
छिनहूँ जे न भए कहूँ न्यारे।
ते हूँ बन्धुन छोड़ि सिधारे ।।
जो दृग कोर महीप निहारत।
आजु काक तेहि भोज बिचारत ।।
भुज बल जे नहिं भवन समाए।
ते लखियत मुख कफन छिपाए ।।
नरपति प्रजा भेद बिनु देखें।
गनें काल सब एकहि लेखे ।।
सुभग करूप अमृत बिख साने।
आजु सबै इक भाव बिकाने ।।
पुरू दधीच कोऊ अब नाहीं।
रहे नावं हीं ग्रन्थन मांही ।।

अहा ! देखो वही सिर जिसपर मंत्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रक्खा जाता था, जिसमें इतना अभिमान था कि इन्द्र को भी तुच्छ गिनता था, और जिसमें बड़े-बड़े राज जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिचाशों का गेंद बना है और लोग उसे पैर से छूने में भी घिन करते हैं। (आगे देखकर) अरे यह स्मशान देवी हैं। अहा कात्यायनी को भी कैसा वीभत्स उपचार प्यारा है। यह देखो डोम लोगों ने सूखे-गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़-पकड़ कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैंसों के गले के घण्टे पीपल की डार में लपट रहे हैं जिन में लोलक की जगह नली की हड्डी लगी है। घट के पानी से चारों ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खंभे में लोहू के थापे लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उस के खाने को कुत्ते और सियार लड़-लड़ कर कोलाहल मचा रहे हैं। (हाथ जोड़ कर) 'भगवति ! चंडि ! प्रेते ! प्रेते बिमाने ! लसत्प्रेते। प्रेतास्थि रौद्ररूपे ! प्रेताशनि। भैरवि ! नमस्ते। (नेपथ्य में) राजन् हम केवल चंडालों के प्रणाम के योग्य हैं। तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। मांगों क्या बर मांगते हो।

हरिश्चन्द्र : (सुनकर आश्चर्य से) भगवति ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिए। (नेपथ्य में) साधु महाराज हरिश्चन्द्र साधु !

हरिश्चन्द्र : (ऊपर देखकर) अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनी बल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्त्तक था, जो दो पहर तक अपना प्रचंड प्रताप क्षण-क्षण बढ़ाता गया, जो गगनांगन का दीपक और कालसर्प का शिखामणि था, बह इस समय परकटे गिद्ध की भाँति अपना सब तेज गंवाकर देखो समुद्र में गिरा चाहता है।

अथवा

सांझ सोई पट लाल कसे कटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है/पच्छिन के बहु सब्दन के मिस जीग्र उचाटन मंत्र कह्यो है/मद्य भरी नर खोपरी सो ससि को नव बिम्बहू धाइ गह्यो है/दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै कालकपालिक नाचि रह्यो है।

सूरज धूम बिना की चिता सोई ग्रंत में लै जल माहिं बहाई/ बोलैं घने तरु बैठी बिहंगम रोग्रत सो मनु लोग लोगाई/ धूम ग्रंधार, कपाल निसाकर, हाड़ नछत्र लहूसी[1] ललाई/ ग्रनंद हेतु निसाचर के यह काल समान सी सांझ बनाई।

ग्रहा ! यह चारों ग्रोर से पक्षी लोग कैसा शब्द करते हुए ग्रपने-ग्रपने घोसलों की ग्रोर चले ग्राते हैं। वर्षा से नदी का भयंकर प्रवाह, सांझ होने से स्मशान के पीपल पर कौग्रों का एक संग ग्रमंगल शब्द से कांव-कांव करना, ग्रौर रात के ग्रागम से एक सन्नाटे का समय चित्त में कैसी उदासो ग्रौर भय उत्पन्न करता है। ग्रंधकार बढ़ता ही जाता है। वर्षा के कारण इन श्मशानवासी मंडूकों का टर-टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है।

रुरुग्रा चहुंदिसि ररत डरत सुनि कै नर नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पूकारी॥
ग्रन्धकार बस गिरत काक ग्ररु चील करत रव।
गिद्ध गरुड़ हड़गिल्ल भजत लखिविकट भयद दव॥
रोग्रत सियार गरजत नदी स्वान भूमि डरपावई।
संग दादुर भींगुर रुदन धुनि मिलि खर तुमुल मचावई॥

इस समय ये चिता भी कैसो भयंकर मालूम पड़तो है। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कही ग्रांच से हाथ पैर जलकर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर ग्राधा जला है, कहीं बिल्कुल कच्चा है, किसी को वैसे ही पानी में बहा

---

1. प्राचीन काल में राज के ग्रपराधी लोग स्मशान ही पर गला काट कर जाते थे इसी से यहां श्मशान के वर्णन में लोहू का वर्णन है।

दिया है, किसी को किनारे छोड़ दिया है, किसी का मुंह जल जाने से दांत निकला हुआ भयंकर हो रहा है, और कोई दहकती आग में ऐसा जल गया कि कहीं पता भी नहीं है। वाहरे शरीर! तेरी क्या-क्या गति होती है!!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे, उसको कीड़ों वा मछलियों से नुचवाना और सड़ा कर दुर्गंधमय करना बहुत ही बुरा है। न कुछ शेष रहेगा न दुर्गति होगी। हाय! चलो आगे चलें। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर घूमता है) (कौतुक से देखकर) पिशाचों का क्रीड़ा कुतूहल भी देखने योग्य है। अहा! यह कैसे काले-काले झाड़ू से सिर के बाल खड़े किये लम्बे-लम्बे हाथ पैर, विकराल दांत, लम्बी जीभ निकाले इधर-उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं, मानों भयानक रस की सेना मूर्तिमान होकर यहां स्वच्छंद बिहार कर रही है। हाय हाय! इन का खेल और सहज व्योहार भी कैसा भयंकर है। कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लोहू भर-भर के पीता है, कोई सिर का गेंद बनाकर खेलता है, कोई अंतड़ी निकालकर गले में डाले है और चंदन की भांत चरबी और लोहू शरीर में पोत रहा है, एक दूसरे से मांस छीन कर ले भागता है, एक जलता मांस मारे तृष्णा के मुंह में रख लेता है पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू-थू करके थूक देता है, और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है। हा! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ-समेत नोच लाई है जिसे देखने को चारों ओर से सब भूतने एकत्र हो रहे हैं और सभों को इसका बड़ा कौतुक हो गया है। हंसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुरदों के अंगों से लड़ते हैं और उनको ले ले कर नाचते हैं। यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो स्मशान में कुत्तों को पकड़-पकड़ कर खा जाते हैं। अहा! भगवान् भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योग साधना की है। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है)

(ऊपर देख कर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अंधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता। चांडाल कुल की भांत स्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है। (स्मरण करके) हा! इस दुःख की दशा में भी हमसे प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता। सच है—"टूट टाट घर टपकत खटियौ टूट। पिय कै बांह उसिसवां सुख कै लूट"। बिधना ने इस दुःख पर भी बियोग दिया। हा! यह वर्षा और यह दुःख! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा पर जिसने सपने में भी दुःख नहीं देखा, वह महारानी किस दशा में होगी। हा देवि! धीरज धरो, धीरज धरो। तुमने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिसके साथ सदा दुःख ही दुःख है। (ऊपर देखकर) अरे पानी बरसने लगा! (घोघी भली भांत ओढ़कर) हमको तो यह वर्षा और स्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो

चपला की चमक चहूंगा सों लगाई चिता चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है।

हेती बग माल स्याम बाद सु भुमिकारी बीर बधू बूंद भव लपटायो है।।

हरीचन्द नीर धार आंसू सी परत जहाँ दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है।

दाहन बियोगी दुखियान को मरे हूं यह देखो पापी पावस मसान बनि आयो है।।

(कुछ देर तक चुप रह कर) कौन है? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिर कर)

इन्द्रकालहू सरिस जो आयसु लांघै कोय।
यह प्रचंड भुज दंड मम प्रति भट ताको होय।।

अरे कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़कर) कौन है? (नेपथ्य में) हम हैं।

हरिश्चन्द्र : अरे हमारी बात का उत्तर कौन देता है? चलो जहां से

ग्रावाज ग्राई है वहां चलकर देखें। (ग्रागे बड़कर नेपथ्य की ग्रोर देखकर) ग्ररे यह कौन है ?



चिता भस्म सब ग्रंग लगाए। ग्रस्थि ग्रभूषन बिबिध बनाए।।
हाथ मसान कपाल जगावत। को यह चल्यो रुद्र सम ग्रावत।।

(कापालिक के वेष में धर्म ग्राता है[1])

---

1. गेरुए वस्त्र का काछा कछे, गेरुग्रा कफनी पहिने. सिर के बाल खुले, सेंदुर का ग्रर्द्ध चंद्र दिए, नगी तलवार गले में लटकती हुई, एक हाथ में खप्पड़ बलता हुग्रा, दूसरे हाथ में चिमटा, ग्रंग में भभूत पोते, नशे से ग्राँखें लाल, लाल फूल की माला ग्रौर हड्डी के ग्राभूषण पहिने।

धर्म : अरे हम है।

वृत्ति अयाचित आत्म रति करि जग के सुख त्याग।
फिरहिं मसान–मसान हम धारि अनन्द बिराग॥

(आगे बढ़कर महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत।
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत॥

हमहीं नर के मोत सदा सांचे हितकारी।
हम ही इक संग जात तजत जब पितु सुत नारी॥

सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सो सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो॥

(कुछ सोचकर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दु:ख परम्परा अत्यन्त शोचनीय और इनके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं! अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है।

सहत बिबिध दुख मरि मिटत भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छाड़हीं जे जग सांचे लोग॥

बरु सूरज पच्छिम उगैं बिन्ध्य तरै जल मांहि।
सत्य बीर जन पै कबहुं निज बच टारत नाहिं॥

अथवा उनके मन इतने बढ़े हैं कि दुख को दुख, सुख को सुख गिनते ही नहीं। चलें उनके पास चलें। (आगे बढ़कर और देखकर) अरे यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं? (प्रकट) महाराज! कल्याण हो।

हरिश्चन्द्र : (प्रणाम करके) आइये योगिराज।

धर्म : महाराज हम अर्थी हैं।

हरिश्चन्द्र : (लज्जा और विकलता नाट्य करता है)

धर्म : महाराज आप लज्जा मत कीजिए। हम लोग योग बल से सब कुछ जानते हैं। आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने को बहुत हैं। चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवा कर भिक्षुओं का कल्याण करता है।

हरिश्चन्द्र : आज्ञा। हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिए।

धर्म : अंजन गुटिका पादुका धातुभेद बैताल ।
वज्र रसायन जोगिनी मोहि सिद्ध इहि काल[1] ।

हरिश्चन्द्र : तो मुझे आज्ञा हो वह करूं ।

धर्म : आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गए हैं पर विघ्न इस में बाधक होते हैं सो आप विघ्नों का निवारण कर दीजिए ।

हरिश्चन्द्र : आप जानते ही हैं कि मैं पराया दास हूं, इससे जिनमें मेरा धर्म न जाय वह मैं करने को तैयार हूं ।

धर्म : (आप ही आप) राजन जिस दिन तुम्हारा धर्म जाएगा उस दिन पृथ्वी किसके बल से ठहरेगी (प्रत्यक्ष) महाराज इसमें धर्म न जायगा क्योंकि स्वामी को आज्ञा तो आप उल्लंघन करते ही नहीं । सिद्धि का आकर इसी स्मशान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूँ, आप बिघ्नों का निषेध कर दीजिए ।

(जाता है)

हरिश्चन्द्र : (ललकार कर) हटो रे हटो बिघ्नों चारों ओर से तुम्हारा प्रचार हम ने रोक दिया ।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज जो आज्ञा ।

आप से सत्य वीर की आज्ञा कौन लांघ सकता है ।

खुल्यौ द्वार कल्यान को सिद्ध जोग तप आज ।
निधि सिद्धि विद्या सब करहिं अपुने मन को काज ।।

हरिश्चन्द्र : (हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया ।

---

1. अंजन सिद्धि से जमनी में गड़े खजाने देख पड़ते हैं । गुटिका घुँह में रखकर वा पादुका पहिन कर चाहे जहां अलक्ष्य चला जाय । घाधुभेद से औषध मात्र सिद्ध होती है । बैताल बस में होकर यथेच्छ काम देता है । वज्र सिद्ध होने से जहां गिराओ वहां गिरता है । रसायन सिद्धि से चांदी सोना बनता है । जोगिनी सिद्ध होने से भूत भविष्य का वृत्तांत कह देती है । और सब इच्छा पूर्ण करती है । यही आठों सिद्धि हैं ।

(बिमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्या आती हैं[1])

महाविद्या : वि. महाराज हरिशचन्द्र ! बधाई है । हमी लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिस्रम किया था तब देवताओं ने माया से आपको स्वप्न में हमारा रोना सुनकर हमारा प्राण बचाया ।

हरिश्चन्द्र : (आप ही आप) अरे यही सृष्टि की उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली महाविद्या हैं जिन्हे विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके। (प्रकट—हाथ जोड़कर) त्रिलोकविजयिनी महाविद्याओं को नमस्कार है ।

महाविद्या : वि. महाराज हम लोग आप के बस में हैं । हमारा ग्रहण कीजिए ।

हरिश्चन्द्र : देवियों ! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि को वशवर्त्तिनी हों, क्योंकि उन्होंने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है ।

महाविद्या : वि. (परस्पर आश्चर्य से देखकर) धन्य महाराज धन्य ! जो आज्ञा ।

(जाती हैं/धर्म एक बैताल के सिर पर पिटारा रखवाए हुए आता है)

धर्म : महाराज का कल्याण हो । आप की कृपा से महानिधान[2] सिद्ध हुआ । आपको बधाई है अब लीजिए इस रसेन्द्र को ।

याही के परभाव सों अमरदेव सम होइ ।
जोगी जन बिहरहिं सदा मेरु शिखर भए खोइ ।।

हरिश्चन्द्र : (प्रणाम करके) महाराज दास धर्म के यह विरुद्ध है । इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है ।

धर्म : (आश्चर्य से आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) तो इसके स्वर्ण बना कर आप अपना दास्य छुड़ा लें ।

1. ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेश में; पर स्त्री का शृंगार ।
2. महानिधान बुभुक्षित धातु भेदी पारा जिसे बावन तोला पाव रत्ती कहते हैं ।

हरिश्चन्द्र : यह ठीक है पर मैंने तो बिनती किया न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है। क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना सत्व मात्र बेच चुका इससे आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिए।

धर्म : (आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र! धन्य तुम्हारा धैर्य! धन्य तुम्हारा विवेक! और धन्य तुम्हारी महानुभावता! या

चलै मेरु बरु प्रलय जल पवन झकोरन पाय।
पै बीरन कें मन कबहूं चलहिं नाहिं ललचाय॥

तो हमें भी इसमें कौन हठ है। (प्रत्यक्ष) बैताल! जाओ जो महाराज की आज्ञा है वह करो।

बैताल : जो रावल जी की आज्ञा। (जाता है)

धर्म : महाराज ब्रह्म मुहूर्त निकट आया, अब हम को भी आज्ञा हो।

हरिश्चन्द्र : जोगिराज! हम को भूल न जाइएगा, कभी-कभी स्मरण कीजिएगा।

धर्म : महाराज! बड़ बड़े देवता आप का स्मरण करते हैं और करेंगे मैं, क्या हूँ।

(जाता है)

हरिश्चन्द्र : क्या रात बीत गई! आज तो कोई भी मुरदा नया नहीं आया। रात के साथ ही स्मशान भी शांत हो चला। भगवान् नित्य ही ऐसा करें।

(नेपथ्य में घंटानूपुरादि का शब्द सुनकर) अरे यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ?

(बिमान पर अष्ट महासिद्धि नव निधि और बारहों प्रयोग आदि देवता[1] आते हैं)

हरिश्चन्द्र : (आश्चर्य से) अरे यह कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर स्मशान पर एकत्र हो रहे हैं।

देवता : महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो। आप के अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छट कर स्वतंत्र हो गए। अब हम आपके वश में हैं जो आज्ञा हो करें। हम लोग अष्ट महा सिद्ध नव निधि और बारह प्रयोग सब आप के हाथ में हैं।

हरिश्चन्द्र : (प्रणाम करके) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हों तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जन के और प्रयोग साधकों के पास जाओ।

देवता : (आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे। हमीं लोगों की सिद्धि को बड़े-बड़े योगी मुनि पच मरते हैं पर तुमने तृण की भांति हमारा त्याग करके जगत कल्याण किया।

हरिश्चन्द्र : आप लोग मेरे सिर आंखों पर हैं पर मैं क्या करूं, क्योंकि मैं पराधीन हूं। एक बात और भी निवेदन है। वह यह कि छ अच्छे प्रयोग की तो हमारे समय में सद्यः सिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलंब से हो।

देवता : महाराज ! जो आज्ञा। हम लोग जाते हैं। आज आप के सत्य ने शिव जी के कीलन[2] को भी शिथिल कर दिया। महाराज का कल्याण हो।

---

1. साधारण देवी देवताओं के वेश में। अष्ठ महासिद्धि यथा-- अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईश्वत्व और वशित्व। नव निधि यथा— पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नील, और वर्च्चस। बारह प्रयोग यथा—मारण, मोहन उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन यह छ बुरे; और स्तंभन, वशीकरण, आकर्षण, वंदी मोक्षण, कालपूरण और वाक् प्रसारण ये छः अच्छे।
2. शिवजी ने साधन मात्र को कील दिया है जिस में जलदी न सिद्ध हों, सो राजा हरिश्चन्द्र ने विघनों को जो रोक दिया इस से वह कीलन भी शिव जी की इच्छा पूर्वक उस समय दूर हो गया था क्योंकि यह भी तो एक सब में बड़ा विघ्न था।

(जाते हैं)/(नेपथ्य में इस भांति मानो राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनते)

(एक स्वर से) तो अब अप्सरा को भेजें ?

(दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख ! जिस को अष्ट-सिद्धि नव-निधियों ने नहीं डिगाया, उसको अप्सरा क्या डिगावेंगी ।

(एक स्वर से) तो अब अन्तिम उपाय किया जाय ।

(दूसरे स्वर से) हाँ तक्षक को आज्ञा दे । अब और कोई उपाय नहीं है ।

हरिश्चन्द्र : अहा अरुण का उदय हुआ चाहता है । पूर्व दिशा ने अपना मुंह लाल किया । (साँस लेकर) वा चकई को भयो चित चीतो चितोति चहूं दिसि चाय सों नाची । ह्वै गई छीन कलाधर की कला जामिनी जोति मनो जम जांचि । बोलत बैरी बिहंगम देव संजोगिन की भई संपति काची । लोहू पियो जो बियोगिन का भी कियो मुख लाल पिशाचिन प्राची । हा ! प्रिये इन बरसातों की रात को तुम रो-रो के बिताती होगी ! हा ! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए, तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गए !

जोहि सहसन परिचायिका राखत हाथहि हाथ ।
सो तुम लोटत धूर मैं दास बालन साथ !
जाकी आयसु जग नृपति सुनतहि धारत सीस !
तेहि द्विज बटु अज्ञा करत अहह कठिन अति इस ।
बिनु तन बेचे बिनु जग ज्ञान विवेक ।
दव सर्पदंशित भए भोगत कष्ट अनेक ।

(घबड़ाकर) नारायण ! नारायण ! मेरे मुख से क्या निकल गया । देवता उस की रक्षा करें । (बांई आंख का फड़कना दिखाकर) इसी समय में यह महा अपशकुन क्यों हुआ ? (दाहिनी भुजा का फड़कना दिखाकर) अरे और साथ ही यह मंगल शकुन भी ! न जाने क्या होनहार है, वा अब क्या होनहार है जो होना था सो हो चुका । अब

इस से बढ़कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरण मात्र बाकी है। इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहिले ही शरीर छूठे क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है पर बश क्या है।

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चन्द्र सावधान ! यही अन्तिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरखा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एक टक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुःख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इन का सिर नीचा हो। अपने धैर्य का स्मरण करो।

हरिश्चन्द्र : (घबड़ाकर ऊपर देखकर) अरे ! यह कौन है ? कुलगुरू भगवान् सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं। (ऊपर देखकर) पितः मैं सावधान हूँ, सब दुखों को फूल की माला की भांति ग्रहण करूंगा। (नेपथ्य से रोने की आवाज सुन पड़ती है)

हरिश्चन्द्र : अरे अब सबेरा होने के समय मुरदा आया ! अथवा चांडाल कुल का सदा कल्याण हो हमें इस से क्या। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई ! हाय बेटा हमें रोती छोड़ के कहां चले गए ! हाय ! हाय रे !

हरिश्चन्द्र : अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इस को पुत्र का है। हाय हाय ! हमको भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और वीभत्स कर्म सौंपा है। इससे भी बस्त्र मांगना पड़ेगा।

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिये आती है)

शैव्या : (रोती हुई) हाय ! बेटा जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले ! हाय हमारी बिपत और बुढ़ौती की ओर भी तुमने न देखा ! हाय ! हाय रे अब हमारी कौन गति होगी ! (रोती है)

हरिश्चन्द्र : हाय ! हाय ! इसके पति ने भी इसको छोड़ दिया है। हा ! इस तपस्विनी को निष्करुण बिधि ने बड़ा ही दुख दिया है।

शैव्या : (रोती हुई) हाय बेटा ! अरे आज मुझे किसने लूट लिया – हाय मेरी बोलती चिड़िया कहां उड़ गई ! हाय अब मैं किसका मुंह देख के जीऊंगी ! हाय मेरी अंधी की लकड़ी कौन छीन ले गया ! हाय मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किसने तोड़ डाला ! अरे बेटा तू तो मरे पर भी सुन्दर लगता है ! हाय रे ! अरे बोलता क्यों नहीं ! बेटा जल्दी बोल, देख माँ कब की पुकार कर रही है ! बच्चा तू तो एक दफे पुकारने में दौड़कर गले से लिपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता !

हरिश्चन्द्र : हाय हाय ! इस दुखिया के पास खड़ा नहीं हुआ जाता।

शैव्या : (पागल की भाँति) यह क्या हो रहा है। बेटा कहाँ गये हो, आओ जल्दी ! अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगता है यहां मुझ को कौन ले आया है रे ! बेटा जल्दी आओ ! क्या कहते हो, मैं गुरु को फूल देने गया था वहां काले सांप ने मुझे काट लिया ! हाय हाय रे ! अरे कहां काट लिया ? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावै बच्चे को। अरे वह सांप कहां गया ! हम को क्यो नहीं काटता ? काट रे काट, क्या उस सुकुंआर बच्चे ही पर बल दिखाना था ? हमें काट। हाय हमको नहीं काटता। अरे हियां तो कोई सांप-वांप नहीं है, मेरे लाल झूठ बोलना कब से सीखे ? हाय हाय मैं इतना पुकारती हूँ और तुम खेलना नहीं छोड़ते ? बेटा गुरुजी पुकार रहे हैं उनके होम की बेला निकली जाती है। देखो बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं। दो जल्दी इनको दूब और बेलपत्र। हाय हमने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते ! (जोर से) बेटा सांझ भई, सब विद्यार्थी लोग घर फिर आए, फिर तुम अब तक क्यों नहीं आए ? (आगे शब देखकर) हाय हाय रे ! अरे मेरे लाल को सांप ने सचमुच डंस

लिया ! हाय लाल ! हाय मेरे आँखों के उजियाले को कौन ले गया ! हाय ! नेरा बोलता हुआ सुग्गा कहां उड़ गया ! बेटा अभी तो बोल रहे थे अभी क्या हो गया ! हाय मेरा बसा घर किसने उजाड़ दिया ! हाय मेरी कोख में किसने आग लगा दी ! हाय मेरा कलेजा किसने निकाल लिया ! (चिल्ला-चिल्लाकर रोती है) हाय लाल कहां गए ! अरे अब मैं किसका मुंह देख के जीऊंगी ! हाय अब माँ कहके मुझको कौन पुकारेगा ! अरे आज किस बैरी की छाती ठण्डी भई रे ! अरे तेरे सुकुंआर अंगों पर भी काल को तनिक दया न आई ! अरे बेटा आंख खोलो ! हाय मैं सब बिपत तुम्हारा ही मुंह देखकर सहती थी सो अब कैसे जीती रहूंगी ! अरे लाल एक बेर तो बोलो। (रोती है)

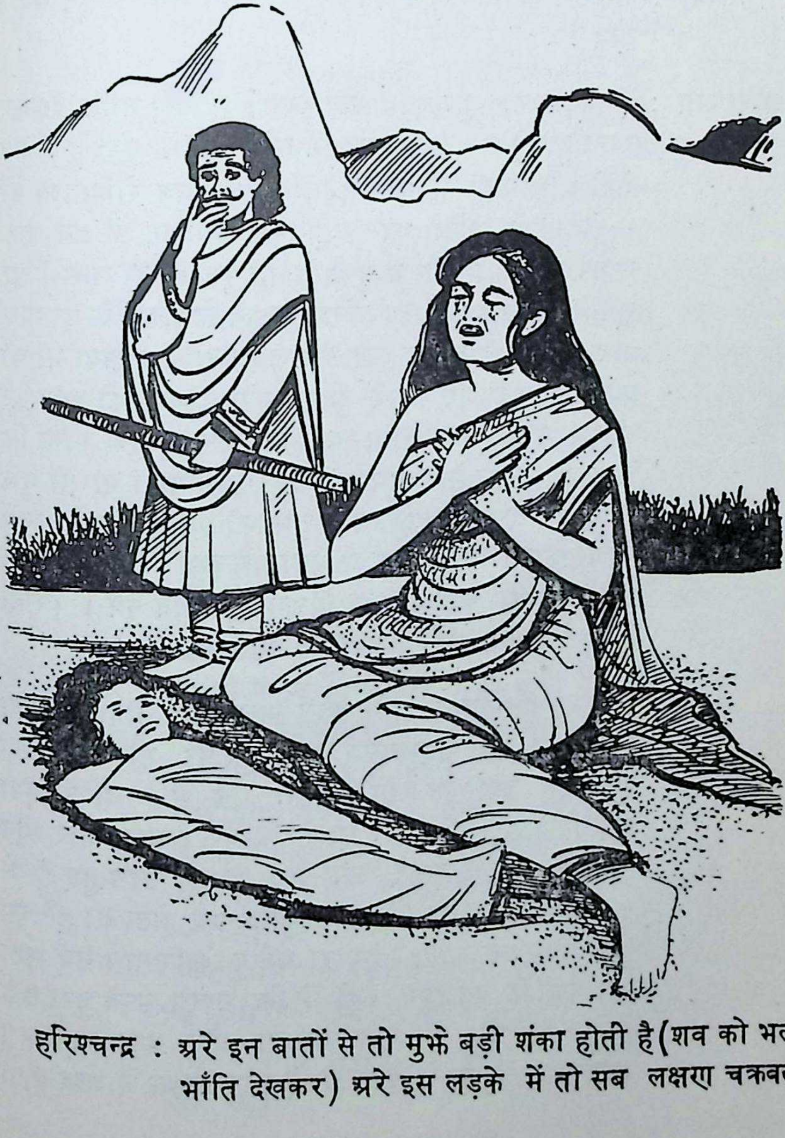
हरिश्चन्द्र : न जाने क्यों इसके रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है।

शैव्या : (रोती हुई) नाथ ! अरे अपने गोद के खेलाए बच्चे की यह दशा क्यों नहीं देखते ! हाय ! अरे तुम ने तो इसको हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना, सो हमने इसकी यह दशा कर दी ! हाय ! अरे ऐसे समय में भी आकर नहीं सहाय होते ! भला एक बेर लड़के का मुंह तो देख जाओ ! अरे मैं किसके भरोसे अब जीऊंगी।

हरिश्चन्द्र : हाय हाय ! इसकी बातों से प्राण मुंह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है। यहाँ से हट चलें (कुछ दूर हटकर उसकी ओर देखता खड़ा हो जाता है)।

शैव्या : (रोती हुई) हाय ! यह बिपत का समुद्र कहां से उमड़ पड़ा ! अरे छलिया मुझे छलकर कहां भाग गया ! (देखकर) अरे आयुस की रेखा–तो इतनी लम्बी है फिर अभी से यह बज्र कहां से टूट पड़ा ! अरे ऐसा सुन्दर मुंह बड़ी-२ आंख, लम्बी-लम्बी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रंग ! हाय मरने के तुझ में कौन से लच्छन थे जो भगवान

ने तुझे मार डाला ! हाय लाल ! और बड़े-बड़े जोतसी गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवती राजा होगा, बहुत जीयेगा, सो सब झूंठ निकला ! हाय ! पोथी, पत्रा, पूजा-पाठ, दान, जप, होम कुछ भी काम न आया ! हाय पुत्र तुम्हारा बाप कठिन समय भी तुम्हारा सहाय न भया और तुम चल बसे ! हाय !



हरिश्चन्द्र : अरे इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है (शव को भली भाँति देखकर) अरे इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती

के से दिखाई पड़ते हैं। हाय न जाने किस बड़े कुल का दीपक ग्राज इस ने बुझाया है, ग्रौर न जाने किस नगर को ग्राज इसने ग्रनाथ किया है। हाय ! रोहिताश्व भी इतना बड़ा भया होगा (बड़े सोच से) हाय हाय ! मेरे मुँह से क्या ग्रमंगल निकल गया। नारायण (सोचता है)

शैव्या : भगवान विश्वामित्र ! ग्राज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे भये। हाय !

हरिश्चन्द्र : (घबड़ाकर) हाय हाय यह क्या ? (भली-भांति देखकर रोता हुग्रा) हाय ग्रब तक मैं संदेह ही में पड़ा हूं ? ग्ररे मेरी ग्राखें कहां गई थीं जिनने ग्रब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना, ग्रौर कान कहाँ गये थे जिन ने ग्रब तक महारानी की बोली न सुनी ! हा पुत्र ! हा लाल ! हा सूर्यवंश के ग्रंकुर ! हा हरिश्चन्द्र की बिपत्ति के एकमात्र ग्रवलम्ब ! हाय तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया मां को छोड़कर कहां गए। ग्ररे तुम्हारे कोमल ग्रंगों को क्या हो गया ! तुमने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि ग्रभी से चल बसे। पुत्र स्वर्ग ही ऐसा प्यारा था तो मुझ से कहते, मैं ग्रपने बाहुबल से तुम को इसी शरीर से स्वर्ग पहुंचा देता। ग्रथवा इस ग्रभिमान से क्या ? भगवान् इसी ग्रभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र। (रोता है)।

ग्राह मुझसे बढ़कर ग्रौर कौन मन्दभाग्य होगा ! राज्य गया, धन, जन, कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्र-शोक उपस्थित हुग्रा। भला ग्रब मैं रानी को क्या मुंह दिखाऊं। निस्संदेह मुझसे ग्रधिक ग्रभागा ग्रौर कौन होगा। न जाने हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं जो कुछ हमने ग्राज तक किया, वह यदि पुण्य होता तो हमे यह दुःख न देखना पड़ता। हमारा धर्म का ग्रभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि ग्रच्छा करते बुरा फल मिले, निस्संदेह मैं महा ग्रभागा ग्रौर बड़ा पापी हूं। (रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है ग्रौर नेपथ्य में शब्द होता

है) क्या प्रलयकाल आ गया? नहीं। यह बड़ा भारी असगुन हुआ है। इसका फल कुछ अच्छा नहीं, वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा। हा! न जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा है (रोता है) हा सूर्यकुल आलवालप्रवाल! हा हरिश्चन्द्र हृदयानन्दन! हा शैव्याबलम्ब! हा वत्सरोहिताश्व! हा मातृ पितृ विपत्ति सहचर! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़कर कहां गए! आज हम सचमुच चांडाल हुए। लोग कहेंगे कि इस ने न जाने कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा। हाय हम संसार को क्या मुंह दिखावेंगे। (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रगट होने के पहले ही हम भी प्राण त्याग करें। हा निर्लज्ज प्राण तुम अब भी क्यों नहीं निकलते। हा बज्र हृदय इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता। नेत्रों अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो। या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीता जाता है, इसके पूर्व कि किसी से साम्हना हो प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है (पेड़ के पास जाकर फांसी देने के योग्य डाल खोजकर उसमें दुपट्टा बांधता है) धर्म! मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया परन्तु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा, सो मुझे क्षमा करना। (दुपट्टे की फांसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) गोविन्द गोविन्द! यह मैंने क्या अनर्थ अधम बिचारा। भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राण त्याग करना चाहा। भगवान सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण नारायण! इस इच्छाकृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा! हे सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर क्षमा करना, दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती; अब तो मैं चांडालकुल का दास हूं, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र। चलूं अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊं, वा देखूं अब दुक्खिनी शैव्या क्या करती है (शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है)।

शैव्या : (पहली तरह बहुत रोकर) हाय ! अब मैं क्या करूं। अब मैं किसका मुंह देखकर संसार में जीऊंगी। हाय मैं आज से निपूती भई ! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी। हा नित्य सबेरे उठकर अब मैं किसकी चिन्ता करूंगी। खाने के समय मेरी गोद में बैठकर और मुझ से मांग-मांग कर अब कौन खायगा ! मैं परोसी थाली सूनी देखकर कैसे प्रान रक्खूंगी। (रोती है) हाय खेलता-खेलता आकर मेरे गले से कौन लिपट जायगा, और माँ माँ कहकर तनिक-तनिक बातों पर कौन हठ करेगा। हाय मैं अब किसको अपने आंचल से मुंह की धूल पोंछकर गले लगाऊंगी और किसके अभिमान से बिपत में भी फूली-फूली फिरूंगी। (रोती है) या जब रोहिताश्व नहीं तो मैं ही जी के क्या करूँगी। (छाती पीटकर) हाय प्रान तुम भी क्यों नहीं निकले। (हाय मैं ऐसी स्वारथी हूँ कि आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती। नहीं नहीं अब मैं न जीऊँगी। या तो इस पेड़ में फांसी लगाकर मर जाऊँगी या गंगा में कूद पड़ूंगी (उन्मत्त की भांति उठकर दौड़ना चाहती है)।

हरिश्चन्द्र : (आड़ में से)

तनहिं लेचि दासी कहवाई।
मरत स्वामि आयसु बिन पाई।।
करू न अधर्म सोचु जिय माहीं।
'पराधीन सपने हुं सुख नाहीं।।'

शैव्या : (चौकन्नी होकर) अहा ! यह किसने बस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया। सच है मैं अब इस देह की कौन हूं जो मर सकूं। हां देव ! मुझसे यह भी न देखा गया कि मैं मरकर भी सुख पाऊं। (कुछ धीरज धरके) तो चलूं छाती पर बज्र धरके अब लोकरीति करूं। (रोती और लकड़ी चुनकर चिता बनाती हुई) हाय ! जिन हाथों से ठोंक-ठोंक कर रोज सुलाती थी उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूंगी, जिसके मुंह में छाला पड़ने के

भय से कभी मैंने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे—(बहुत ही रोती है)।

हरिश्चन्द्र : धन्य देवी आखिर तो चन्द्र सूर्यकाल की स्त्री हो। तुम न धीरज धरोगी तो कौन करेगा।

शैव्या : (चिता बनाकर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती है और रोती है)।

हरिश्चन्द्र : तो अब चलें उससे आधा कफन मांगें (आगे बढ़कर और बलपूर्वक आंसूओं को रोककर शैव्या से) महाभागे! स्मशानपति की आज्ञा है कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फूंकने न पावे सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे दो तब क्रिया करो (कफन मांगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्पवृष्टि होती है।)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्यमहो सत्यमहो दानमहो बलं। त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्ब्बं लोकोत्तर कृतं।

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शैव्या : हाय! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं, नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखंड है,

हरिश्चन्द्र : (दोनों कान पर हाथ रखकर) नारायण नारायण! महाभागे ऐसा मत कहो; शास्त्र, बाह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित्त होगा। अपना धर्म बिचारो। लाओ मृतकंबल हमें दो और अपना काम आरम्भ करो (हाथ फैलाता है)

शैव्या : (महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवती का चिन्ह देखकर और कुछ स्वर, कुछ आकृति से अपने पति को पहचानकर) हा आर्यपुत्र इतने दिन तक कहां छिपे थे! देखो अपने गोद के खेलाए दुलारे पुत्र की दशा। तुम्हारा प्यारा

रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भांति मसान में पड़ा है (रोती है)।

हरिश्चन्द्र : प्रिये धीरज धरो। यह रोने का समय नहीं है। देखो सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आ जाय और हम लोगों को जान ले, और एक लज्जा मात्र बच गई है वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल रखकर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कम्बल हमको दो।

शैव्या : (रोती हुई) नाथ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आंचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूं, उसमें से भी जो आधा दूंगी तो यह खुला ही रह जायेगा। हाय चक्रवती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता! (बहुत रोती है)

हरिश्चन्द्र : (बलपूर्वक आंसूओं को रोककर और बहुत धीरज धर कर) प्यारी रोओ मत। ऐसे ही समय में तो धीरज और धरम रखना काम है। मैं जिस का दास हूँ उस की आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिए क्रिया मत करने दो। इससे मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझकर तुम से इसका आधा कफन न लूँ तो बड़ा अधर्म हो। जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा उसका धर्म आध गज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दे। देखो सबेरा हुआ चाहता है ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान् सूर्य अपने वंश की यह दुर्दशा देखकर चित् में उदास हों। (हाथ फैलाता है)

शैव्या : (रोती हुई) नाथ जो आज्ञा। (रोहिताश्व का मृतकंबल फाड़ना चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छूटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है। नेपथ्य में बाजे की और बस धन्य और जय-जय की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं और भगवान् नारायण प्रकट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं।)

भगवान् ना. : बस महाराज बस (धर्म और सत्य सब की परमावधि हो गई। देखो तुम्हारे पुण्य भय से पृथ्वी बारम्बार कांपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो। (नेत्रों से आंसू बहते हैं)

हरिश्चन्द्र : (साष्टांग दण्डवत् करके रोता हुआ गद्‌गद् स्वर से) भगवान्! मेरे वास्ते आपने परिश्रम किया! कहाँ यह स्मशान भूमि, कहाँ यह मर्त्यलोक कहाँ मेरा मनुष्य शरीर और कहाँ पूर्ण परब्रह्म सच्चिादानंदघन साक्षात् आप! (प्रेम के आंसुओं से और गद्‌गद् कंठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)

भगवान् ना. : (शैव्या से) पुत्री अब शोच मत कर! धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे, राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है (रोहिताश्व की ओर देखकर वत्स रोहिताश्व! उठो देखो तुम्हारे माता पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं।)

(रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान् को प्रणाम कर के माता पिता का मुँह देखने लगता है, आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है)

ह. और शै. : (आश्चर्य, आनंद, करुणा और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते, आँखों से आंसू बहते हैं और एकटक भगवान् के मुखारबिंद की ओर देखते हैं)

(श्री महादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इन्द्र, और विश्वामित्र आते हैं)

सब : धन्य महाराज हरिश्चन्द्र धन्य! जो आपने किया सो किसी ने, न किया, न करेगा।

(राजा हरिश्चन्द्र शैव्या और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं)

विश्वामित्र : महाराज यह केवल चन्द्र सूर्य तक आप की कीर्ति स्थिर रहने के हेतु मैंने छल किया था, सो क्षमा कीजिए और अपना राज्य लीजिए।

(हरिश्चन्द्र भगवान और धर्म का मुंह देखते हैं)

धर्म : महाराज राज आप का है इसका मैं साक्षी हूं, आप निस्संदेह लीजिए।

सत्य : ठीक है जिसने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का पृथ्वी का राज्य है।

श्रीमहादेव : पुत्र हरिश्चन्द्र भगवान नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक पर्यन्त तुम ने पाया तथापि मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारी कीर्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे, और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्ती होय।

पाप : पुत्री शैव्या ! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग की स्त्रियां गावें तुम्हारी पुत्रबधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करे।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

भैरव : और जो तुम्हारी कीर्ति कहे-सुने और उसका अनुसरण करे उस की भैरवी यातना न हो।

इन्द्र : (राजा को आलिंगन करके और हाथ जोड़ के) महाराज मुझे क्षमा कीजिये। यह सब मेरी दुष्टता थी परन्तु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ। स्वर्ग कौन कहे आप ने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया। देखिये आप की रक्षा के हेतु श्रीशिव जी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे नारद जी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया।

हरिश्चन्द्र : (गदगद स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ाने वाला और कौन है।

भगवान् ना. : महाराज। और भी जो इच्छा हो मांगो।

हरिश्चन्द्र : (प्रणाम करके गद्गद् स्वर से) प्रभु ! आप के दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आप की आज्ञानुसार यह वर मांगता हूं कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ बैकुंठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे ।

भगवान् ना. : एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग जीव मात्र सब परमधाम जायंगे, और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायंगे तब भी वह तुम्हारी इच्छानुसार सत्य मात्र एक पद से स्थित रहेगा । इतना ही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ कुछ और भी मांगो । मैं तुम्हें क्या-क्या दूं क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका । तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुम को कुछ और वर दूं । तुम्हें वर देने में मुझे सन्तोष नहीं होता ।

हरिश्चन्द्र : (हाथ जोड़कर) भगवान मुझे अब कौन इच्छा है । मैं और क्या वर मांगूं तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो—

खल गनन सों सज्जन दुखी मति होइं, हरिपद रति रहै ।
उपधर्म छूटें सत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै ।।
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सबजगसुखल है ।
तजि ग्रामकविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै ।।

(पुष्पवृष्टि और बाजे की धुनि के साथ जवनिका गिरती है)

।। इति श्री सत्य हरिश्चन्द्र नाटक सम्पूर्ण हुआ ।।

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के परवर्ती संस्करणों में बढ़ाया गया अंश

(पिशाच और डाकिनी गण परस्पर आमोद करते और गाते बजाते आते हैं)

पि. और डा : हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम।
हम सेवें मसान, शिव को भजें, बोलै बम बम बम ।।

पिशाच : हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ेंगे।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ेंगे ।।

डाकिनी : हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावेंगी।
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावेंगी ।।

सब : हम नाचे मिलकर थेई थेई थेई थेई कूदें धम धम धम।
हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमा छम ।।

पिशाच : हम काट काट कर सिर को गेंदा उछालेंगे।
हम खींच खींच कर चर्बी पंशाखा बालेंगे ।।

डाकिनी : हम मांग के लाल लाल लोहू का सिंदूर लगावेंगी।
हम नस के तागे चमड़े का लहँगा बतावेंगी ।।

सब : हम धज से सज के बज के चलेंगे चमकेंगे चम चम चम।

पिशाच : लोहू का मुँह से फर्र फर्र फ़ुहारा छोड़ेंगे ।।
माला गले पहिरने को अँतड़ी को जोड़ेंगे।

डाकिनी : हम लाद के औंधे मुरदे चौकी बनावैंगी ।।
कफ़न बिछा के लड़कों को उस पर सुलावेंगी।

सब : हम सुख से गावेंगे ढोल बजावेंगे ढम ढम ढम ढम ढम ।।

(वैसे ही कूदते हुए एक ओर चले जाते हैं)

शब्दार्थ कोश

एवं

संस्कृत अंशों का हिन्दी अनुवाद

शब्दार्थ कोश

मंगलाचरण :

सत्यासक्त	सत्य पट ग्रासक्त, सत्यवादी
दयाल	दया करनेवाला
द्विज	विद्वान
ग्रघहर	पाप हरण करना
सुखकंद	सुख का मूल
गुणज्ञ	गुण जानने वाला
बेपरवाह	चिन्तामुक्त
खैरखाही	भलाई चाहना, शुभेच्छा
गाल बजाना	बातें बनाना
मनिहारिन	चूड़ी बेचने वाली
बखेड़े	काम
जिमि	जैसे
सुभाव	स्वभाव
सुनहित	सुना है
लखउ	देखे
प्रतच्छ	प्रत्यक्ष
सुजान	सज्जन
करन	करने वाला

प्रथम ग्रंक :

जवनिका	यवनिका, मंच का प्रथम पर्दा
एक बेर	एक बार
शोच	खेद
उत्कट	श्रेष्ठ

गृह चरित्र	निजी, परिवार के सभी सदस्यों के चारित्रिक गुण
टकसाल	कोषागार, खजाना
महाशय	उच्च गुणों युक्त
अनभिमान	गर्वरहित
निश्चला-भक्ति	अडिग भक्ति
महारंभ	महान, आरम्भ से ही महान
सत्पात्र	योग्य पात्र
सत्यानुरागी	सत्यप्रेमी
परिहास	हंसी उड़ाना
साभिमान	अभिमानपूर्वक, गर्वयुक्त
चरणारविन्द	कमलरुपी चरण
तथापि	फिर भी
कृत्य	काम
अयोग्य	अनुचित
क्षुद्राशयों	संकीर्ण विचार वाले व्यक्ति
रुष्टता	रोष
परकीर्ति	दूसरों का यश
भ्रू भंग	भौंहे भंग होना, टेढ़ी होना
तेजोभ्रष्ट	तेज नष्ट करना, तेज रहित करना
दानीपने	दान देने की आदत

द्वितीय अंक :

आचमन	पान करना
दूर्वा	दूब (घास)
मार्जन	मोचन करना
निसि	रात
रविकुल रवि	सूर्यकुल के सूर्य, सूर्यवंशी के राजा
प्रजा-कमल-गन	प्रजारूपी कमल-दल
रिपुगन	शत्रु
जन-भय-तम	जनता के मन में उत्पन्न भयरूपी अंधकार
उनमूले	समाप्त होना

नसे	नष्ट
खल	दुष्ट
तुव	तुम्हारा
रोर	शोर
पौन	पवन, वायु
परसि	स्पर्श करते ही
असीस	आशीष
सोइ	वे
अंगुरिन चट	अंगुलियां चटकाकर
थित	स्थित
द्विजजन	विद्वान
रिपु-जुबती-मुख-कुमुद	शत्रुपक्ष की युवतियों के कमलरूपी मुख
जन-चक्रवाक	चक्रवाक पक्षियों जैसी जनता
अनुरागे	प्रेममय होना
अरघ	अर्घ्य
सरिस	समान
तिन कहं	उनको
तोखौ	कष्ट
पोखौ	पोषित किया
परिकर	सेवक
निरी	पूर्ण, समग्र
क्षत्रियाधम	क्षत्रियों में नीच
राजप्रतिग्रह-परांमुख	राज्य दान में लेने से विमुख
जेहि	ये, जिसे
रविकुलराज	सूर्यवंशी राजाओं ने
ताहि	उसे
वसुधे	पृथ्वी को सम्बोधन
पुरुषन	पूर्वजों की
छमहु	क्षमा करें
जोय	देखकर
स्वस्ति	शुभ हो
दारा	पत्नी, स्त्री
सुअन	पुत्र

तृतीय अंक :

उऋण	ऋणमुक्त
भागीरथी	गंगा
भूतनाथ	शिव
भवानी	देवी
बर्न	वर्ण
अकास विभासिका	आकाश तक विस्तार वाले, गगनचुम्बी
बिधि	विधाता
कछू	कुछ भी
पुरीन	नगरों
नासिका	नाक, अग्रिम
हीय हुलासिका	हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला
सोहत	शोभित
जममुख	यम का मुख
मसी	काला, स्याह
खसी	नष्ट करना
असी	असी घाट
लसी	सुन्दर
भासी	आभासित होती है
अवलि	पंक्तियां
फबै	शोभित
परकासी	प्रकाशमय
पुनवांसी	पूर्णिमा की जैसी
पोहति	पिरोती है
लोल	सुन्दर
लहि	होकर, बनकर
मज्जन	स्नान
श्रीहरिपदनख	श्रीब्रह्मा के पैर के नाखून
सुधारस	अमृत
मालति माल	मालती की माला
सुवन	पुत्र
उधारन	उद्धार हेतु

धारि	धारण कर
ललकि	ललचाकर
धवल	श्वेत
धुजा	ध्वजा
नौबत	बाद्य यंत्र
अम्बुज	दोनों कमलरूपी हाथ
सुच्छ	स्वच्छ
वारिधि	समुद्र
इमि	इस प्रकार
लब्लही	पुष्पित
दीठि	दृष्टि
जहीं	पृथ्वी पर
तितही	उध रही
बरनी	वर्णन
वरंच	अपितु, इसके अतिरिक्त
त्रैलोक्य	तीनों लोक में
लहनदार	लेनदार, ऋणदाता
बली	शक्तिशाली
दुष्कर	कठिन
उच्छिष्ट	जूंठा
तृण	तिनका
वज्र हृदय	वज्र के समान कठोर हृदय
विदीर्ण	दुःखी
दैव	विधाता
बटुक	शिष्य
हरिरूप	ईश्वर रूप
थिर	स्थिर
मरजाद	मर्यादा
मीत	मित्र
सांचे	सच्चे
हितकारी	हितैषी
पितु	पिता
सुत	पुत्र

नारी	स्त्री, पत्नी
थित	स्थित
परिच्छन	परीक्षा के लिए
नृपति	राजा
करबो	करोगे
तोह	तुमसे
सै	सौ
अमल	प्रभाव, अधिकार
मसान	श्मशान
दारुण	कठोर
व्यसन	कार्य
गाहक	ग्राहक
लेव	लो
पालि	पालन कर
ह्वै	होकर
मोहि	मुझे
दाप	दुःख, परिताप

चतुर्थ अंक :

खसोटी	खींचने
करम	कार्य
सुकुमार	कोमल
पुष्पवृष्टि	फूलों की वर्षा
लाग	सुनकर
चिराईन	मुरदा या शव जलने की गंध
लोहू	रक्त, लहू
बड़ाई	प्रशंसा
अपुनो	अपना
कोय	कोई
माटी	शव
जनावरां	पशु
महोच्छव	महोत्सव

तुच	त्वचा
मोद	प्रसन्नता
जिजुमान	यजमान
सोई	वही
परसत	स्पर्श
जेहि़	उसे
कोय	कोई
रक्त	रक्त
बसा	वशा
मनुस	मनुष्य
कादर	कायर
साज	सामग्री
बखान्यौ	वर्णन किया
गर	गले
वंदत	वंदना करना, स्पर्श करना
अनंदत	प्रसन्न होते हैं
छवि	शोभा
हिय	हृदय
जुड़ानी	जुड़ जाती है
घरनी	गृहिणी
दाहत	जलाना
सहारे	सहा नहीं जाता
तेऊ	उसके
सिधारे	चले गये
हगकोर	नेत्र के कौने से
महीप	राजा
निहारत	देखते हैं
काक	कौआ
ते	वे
लखियत	दिखते हैं
गने	गिनते हैं
काल	मृत्यु
एकहि	एक ही

सुभग	सुन्दर
सबै	सभी
बिकानै	बिकते हैं
ग्रंथन	ग्रंथों, पुस्तकों में
पद्मिनी बल्लभ	कमलिनी के स्वामी
लह्यो	देखा
नरखोपरी	मनुष्य की खोपड़ी
गल्लो	पकड़ा
रूरुश्रा	रुदन
दिसि	दिशाश्रों
ररत	फैलता
भयद	भयदायक, भयंकर
डरपाबही	डराते हैं
तुमुल	कोलाहल
सेन्दुर	सिन्दूर
लाद के	एक के ऊपर दूसरा रखकर
उसिसवां	सांसें लेना
विधना	विधाता
कलेजा	हृदय
चपला	बिजली
चहूंधा	चारों श्रोर
चिनगी	चिनगारी
बगमाल	बगुलों की माला
भुव	संसार
श्रायसु	श्राज्ञा
लांघै	लांघ कर, पार कर
कपाल	खोपड़ी, सिर
वृत्ति	श्रादत
श्रयाचित	बिना मांगे, बिना चाहे
लाखन	श्रसंख्य
सोग	शोक
मांहि	में
बच	वचन

टारत	टालते
अर्थी	याचक
पुरश्चरण	पूजा
आकर	मंदिर
अपुने	अपने
याही	इसके
परभाव	प्रभाव
देव-सम	देवताओं के समान
बिहरहि	बिहार करते हैं, घूमते हैं
मेरु-शिखर	सुमेरु पर्वत
मेरु	सुमेरु
बरु	चाहे
बीरन	वीरों के
अनुग्रह	कृपा
पच मरते हैं	प्राण त्यागते हैं
वा	उस
चित्त चीतो	मनचाहा, अपेक्षित
चितोति	देखकर
चाय	चाव
कलाधर	चन्द्रमा
जामिनी	यामिनी, रात
जोति	ज्योति, प्रकाश
जम	यम, मृत्यु
बैरी	शत्रु
संजोगनि	संयोगों
कांची	कच्ची
प्राची	पूर्व
सहसन	सहस्रों, सैकड़ों
परिचारिका	सेविका
आयसु	आज्ञा
धारत सीस	सिर धारण करते हैं, सिर स्थिर रहते हैं
पुरुषा	पूर्वज

बुढ़ौती	वृद्धावस्था
निष्करुण	करुणाहीन, कठोर
सुगा	तोता
आयुष	आयु,
सर्व्वांतर्यामी	सभी के हृदय के जानकर
मर्त्यलोक	संसार
कीर्त्ति	यश
एवमस्तु	ऐसा ही हो
खलगनन	दृष्टजनों
मत्सर	अभिमान

प्रयुक्त संस्कृत अंशों का हिन्दी अनुवाद

द्वितीय ग्रंक :

स्वस्त्यसुते···· ···· ···· ···· ···· ···· ···· ···हरिभक्तरस्तु ।

तुम्हारा शुभ हो, कुशल हो, दीर्घायु हो, गाय-घोड़ा-हाथी, धन-अन्नादि की वृद्धि हो । सन्तान-वृद्धि के साथ तुममें ईश्वर भक्ति बनी रहे ।

❀ ❀ ❀

देवास्त्वामभिषिचन्तु···· ···· ···· ···· ···· ····शरदां शतम् ।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता तुम्हारा अभिसिंचन करें अर्थात् तुम्हें सुरक्षित रखें । गन्धर्व, किन्नर, नाग सदैव ही तुम्हारी रक्षा करें ।

पितर, कुबेर के कोशरक्षक, यक्ष, देवियां, भूत, सप्तमाताएं अथवा शक्तियाँ सभी सदैव तुम्हारी रक्षा करें । तुम शुभ रहो, सकुशल रहो । महालक्ष्मी तुम पर प्रसन्न हों । हे सती ! तुम पति एवं पुत्रों के साथ सौ वर्ष तक जीवित रहो ।

❀ ❀ ❀

यत्पाप···· ···· ···· ···· ···· ···· ···· ···· ····त्वय्यस्तु ।

जिस प्रकार जल फेंका गया है उसी प्रकार तुम्हारा जो भी पाप और अमंगल हो, वह दूर चला जाय ।

जो कुछ मंगल, शुभ, सौभाग्य, धन-धान्य, स्वस्थता तथा सन्तान-वृद्धि आदि सब ईश्वर की कृपा से और ब्राह्मण के आशीर्वाद से तुम्हारा हो ।

❀ ❀ ❀

जाति स्वयं ग्रहणदुर्ललितंकविप्रं ···· ···· ···· ···· ···· ····माम् ।

अपनी जाति आप ग्रहण करनेवाले, प्रसिद्ध क्रोधी ब्राह्मण, वशिष्ठ के दर्पवान पुत्ररूपी जंगल के लिये अग्निरूप, दूसरी सृष्टि निर्माण से भयभीत संसार के लिये यम समान और चाण्डाल त्रिशंकु के पुरोहित मुझ कौशिक को नहीं पहचानता ।

❀ ❀ ❀

अन्नक्षयादिषु···· ···· ···· ···· ···· ··· ···निधिं न वेत्ति ।

अकालादि के समय निकृष्ट वृत्ति धारण करने वाले, राजाओं का दान न लेने वाले, आडी (वशिष्ठ) तथा वक (विश्वामित्र) के युद्ध से संसार को कम्पित करने वाले और तेज तथा तप के कोष आप को कौन नहीं जानता ।

तृतीय अंक :

येषा क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ।

जिसकी गति कहीं भी नहीं होती है, उसकी गति काशी में है ।

❀ ❀ ❀

अशनं वसनं···· ···· ···· ···· ···· ····गंगाप्यंगार वाहिनी ।

जिसका भोजन, वस्त्र तथा निवास ठीक नहीं है, उसके लिए काशी भी मगल के समान है और गंगा भी ताप देने वाली है ।

❀ ❀ ❀

धिक् तपो धिक्···· ···· ···· ···· ···· ···· ···· ····दशाम् ।

हे ब्राह्मण, तुम्हारे इस तप, व्रत, ज्ञान तथा बहुश्रत् होने को धिक्कार है क्योंकि तुमने ही हरिश्चन्द्र को इस दशा में ला दिया है ।

चतुर्थ अंक :

अहो धैर्य महो···· ···· ···· ···· ···· ···· ···· ····कृतम् ।

धर्म, सत्य, दान, तथा, बल, सभी, आश्चर्यजनक है । हे राजा हरिश्चन्द्र, सारे संसार से बढ़कर कार्य तुम्हारे द्वारा हुआ है ।

□